दुगड्डा की दंतकथायेँ

लोककथाएं पहाड़ों से

अतुल नैथानी

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Atul Naithani 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-388-1

Cover Design: Ajay Dhyani
Typesetting: Sagar

First Edition: June 2026

समर्पण

यह संग्रह समर्पित है मेरे सभी पूज्य पितरों को
जिनका आशीर्वाद मेरे सिर पर सदा बना रहा,
जिनकी कहानियाँ मेरी रगों में बहती हैं,
जिनकी यादें आज भी मेरा रास्ता दिखाती हैं,
और जिनके बिना यह संग्रह अधूरा होता।
उन चिर-परिचित आत्माओं के नाम, जो आज इस दुनिया में नहीं, पर इन कहानियों में हर पल ज़िंदा हैं।

भूमिका
लेखक की कलम दृष्टि से

गढ़वाल के पहाड़ों में बसा छोटा-सा कस्बा है दुगड्डा आज जहाँ बाज़ार है, वहाँ कभी घने जंगल हुआ करते थे । जहाँ सड़कें हैं, वहाँ कभी पगडंडियाँ थीं। और जहाँ आज लोग व्यस्त हैं, वहाँ कभी बुज़ुर्ग चौपाल में बैठकर बच्चों को कहानियाँ सुनाया करते थे।

मैं वहीं पला-बढ़ा हूँ। उन्हीं पगडंडियों पर दौड़ा हूँ, उन्हीं पेड़ की छाँव में बैठा हूँ, और उन्हीं बुज़ुर्गों की कहानियाँ सुनी हैं जिनकी आवाज़ में पूरा पहाड़ समाया हुआ था।

यह संग्रह उन्हीं कहानियों का है।

बचपन में जब मैं अपनी दादी /नानी के पास बैठता, तो वह अक्सर कहानियाँ सुनाया करती थीं। उनकी कहानियों में भूत होते थे, पर वे डरावने नहीं होते थे। वे रोते थे, हँसते थे, प्यार करते थे। उनकी कहानियों में राजा होते थे, जो मरने के बाद भी अपने किले की रखवाली करते थे। उनकी कहानियों में नदियाँ होती थीं, जो बोलती थीं, चेतावनी देती, आशीर्वाद भी देती थीं।

दादी /नानी कहती थीं "बेटा, यह पहाड़ सिर्फ पत्थर नहीं है। इसकी अपनी एक आत्मा है। हर पेड़ में एक कहानी है, हर नदी में एक गीत है, हर पत्थर में एक इतिहास है। बस सुनने का दिल चाहिए।"

मैं सुनता था। आँखें फाड़-फाड़कर सुनता था। वे कहानियाँ मेरे मन में उतरती गईं, मेरी रगों में बहती गईं, मेरी पहचान बन गईं।

साल बीत गए। मैं बड़ा हुआ, शहर गया, पढ़ा-लिखा, नौकरी की। पर वे कहानियाँ मेरे साथ रहीं। जब भी दुगड्डा जाता, बुज़ुर्गों से मिलता, उनसे

कहानियाँ पूछता। उन्हें लगता "यह लड़का अभी तक बच्चा है, अभी तक कहानियों में विश्वास करता है।"

हाँ, मैं करता हूँ। आज भी करता हूँ।

क्योंकि मुझे लगता है कहानियाँ सिर्फ मनोरंजन नहीं होतीं। वे हमारी जड़ें होती हैं। वे हमारी पहचान होती हैं। वे हमें बताती हैं कि हम कहाँ से आए हैं, हमारे पूर्वज क्या सोचते थे, वे क्या मानते थे, वे किससे डरते थे और किससे प्यार करते थे।

इसलिए मैंने यह संग्रह लिखा। ताकि ये कहानियाँ मेरे साथ खत्म न हो जाएँ। ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी जान सकें कि उनके पूर्वजों ने क्या देखा, क्या सोचा, क्या महसूस किया।

कहानियाँ सिर्फ शब्द नहीं होतीं। वे हमारे पूर्वजों की आवाज़ होती हैं। वे हमारी संस्कृति की धड़कन होती हैं। वे हमारी पहचान की जड़ होती हैं।

आज जब हम शहरों में रहते हैं, कंक्रीट के जंगलों में खोए हैं, तो ये कहानियाँ हमें याद दिलाती हैं कि हम कहाँ से आए हैं। ये हमें हमारी जड़ों से जोड़ती हैं। ये हमें बताती हैं कि पहाड़ सिर्फ पत्थर नहीं होते उनमें आत्मा होती है, उनमें जीवन होता है, उनमें कहानियाँ होती हैं।

दुगड्डा की इन कहानियों में पहाड़ की मिट्टी की खुशबू है, खोह नदी की कल-कल है, देवदार के पेड़ों की छाँव है, और पहाड़ी लोगों के दिल की धड़कन है।

आइए, इन कहानियों के सफर पर चलते हैं दुगड्डा की उन गलियों में, जहाँ आज भी कहानियाँ ज़िंदा हैं। जहाँ हर पेड़ एक कहानी कहता है, हर नदी एक गीत गाती है, हर पत्थर में एक इतिहास छिपा है।

बस पढ़ने का दिल चाहिए। और मुझे उम्मीद है कि आपके पास वह दिल है।

अतुल नैथानी

अनुक्रमणिका

1. दुगड़ा की आम डाली: वो भूतनी
   (एक पहाड़ी लघु कहानी) 1
2. कुल्हाड़ मोड़ : वो खामोश गवाह
   (कोटद्वार-पौड़ी मार्ग पर एक भावनात्मक लघु कहानी)............8
3. दारू वाली : पहाड़ की वो औरत
   (एक पहाड़ी लघु कहानी) 14
4. 'छल' - वो छाया जो साथ चलती है
   (पहाड़ की एक लोक कथा) 22
5. चम्पा चाची : वो प्यार जो कभी नहीं मरा..............................30
6. धनिया की पुकार - दारू से बिखरता परिवार
   (गढ़वाल की एक लोककथा) 38
7. नौड़ी का जंगल - एक प्यार भरी भूत कथा
   (गढ़वाल की एक अमर प्रेम कहानी) 44
8. रतनी का दीप - एक पहाड़ी लोककथा
   (गढ़वाल के पहाड़ों से एक प्रेरक कहानी) 52
9. मुन्ना की मुसीबत - एक अनाथ का संघर्ष
   (दुगड़ा के पहाड़ों से एक संघर्ष भरी लोककथा)....................60
10. दुगड्डा का मौन साधु - सच की लौ
    (खोह नदी के किनारे एक अमर कहानी).............................68
11. रात का यात्री - फतेहपुर का मोड़
    (गढ़वाल की पहाड़ियों से एक आत्मिक कहानी)..................77
12. लंगूरगढ़ किले की रात - पहाड़ के रक्षक
    (दुगड्डा के पहाड़ों से एक ऐतिहासिक लोककथा)................85

13. खोह नदी की चेतावनी - पहाड़ को मत काटो
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक प्रकृति लोककथा)......................94
14. पीपल का पेड़ - पहाड़ की साँस
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक प्रकृति प्रेम की लोककथा).........102
15. गढ़वाली शादी - एक प्रेरणा
(पहाड़ों से एक सामाजिक लोककथा) 111
16. फौजी का परिवार - साहस और त्याग
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक त्याग और गर्व की कहानी).........119
17. वीर वधु - एक फौजी की विधवा
(गढ़वाल के पहाड़ों से एक प्रेम और बलिदान की कहानी)...128
18. नज़र उतारना - छल और ब्वाण
(सेवा धर्म और विश्वास का सच).....................................137
19. पलायन की वेदना - एक बूढ़े का अकेलापन
(गढ़वाल के पहाड़ों से एक मार्मिक कहानी) 145
20. ढाकर – पहाड़ की पीठ
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक मार्मिक कहानी).......................156
21. ढोल की आखिरी थाप - पहाड़ झूम उठा
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक मार्मिक कहानी).......................167
22. सूखती धारा – गधेरा (पानी के खत्म होने का दर्द
और एक विधवा के जीवन का संघर्ष)..............................176
23. नदी के उस पार - एक प्रेम कथा
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक अमर प्रेम कहानी) 186
24. संयुक्त परिवार – अपनापन (पहाड़ के रिश्तों में प्यार, दर्द,
अपनापन और समर्पण की कहानी)..................................196
समापन - लेखक की कलम से 204

दुगड़ा की आम डाली: वो भूतनी
(एक पहाड़ी लघु कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है । पहाड़ी लोककथाओं और परंपराओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है ।

1. वो रास्ता, वो पेड़

दुगड़ा से थोड़ा आगे, जहाँ नदी और सड़क साथ-साथ चलते हैं, वहाँ आम के पेड़ों की एक कतार थी। घने पेड़, फैली हुई डालियाँ, और गर्मियों में आमों की महक। पर यह जगह कोई साधारण जगह नहीं थी।

इन्हीं पेड़ों के पास, थोड़ी दूर पर, एक छोटा-सा श्मशान था। बच्चों का श्मशान। गाँव वाले कहते थे, वहाँ भूत रहते हैं। इसलिए शाम ढलते ही कोई उस रास्ते से नहीं गुजरता था।

2. अतुल की यादें

अतुल को वो जगह आज भी काँपकर याद आती है। पांच दशक पहले की बात है। वह छोटा था, आठ-नौ साल का। उसकी दादी और माँ उसे कहानियाँ सुनाया करती थीं।

"सुन बेटा, उस आम डाली के पास मत जाना। वहाँ एक छोटी बच्ची का भूत रहता है। वह आम तोड़ने गई थी, डाली टूट गई, नदी में गिर गई। तब से वह वहाँ भटक रही है।"

"और सुन, वह श्मशान के पास... वहाँ तो कई आत्माएँ हैं। उन बच्चों की, जो समय से पहले चले गए। रात को उनके रोने की आवाज़ आती है।"

अतुल डर जाता था। रात को कंबल ओढ़कर सोता था। पर उस जगह के प्रति एक कुतूहल भी था।

3. वह शाम, वह मुलाक़ात

सालों बीत गए। अतुल बड़ा हुआ, शहर चला गया, नौकरी की, परिवार बसाया। पर दुगड़ा की यादें उसे हमेशा सताती रहीं। पचास साल बाद, वह फिर दुगड़ा गया। गाँव बदल गया था। नई सड़कें, नए मकान। पर वो आम के पेड़ वहीं थे। और वो श्मशान भी। बुढ़ापे में इंसान निडर हो जाता है। अतुल को अब डर नहीं लगता था। बस एक अजीब-सी खिंचाव थी उस जगह की ओर।

शाम का वक्त था। वह धीरे-धीरे उन पेड़ों के पास गया। नदी कल-कल बह रही थी। सड़क सुनसान थी। वह एक पुराने आम के पेड़ के नीचे बैठ गया।

ठंडी हवा का झोंका आया। अतुल ने ऊपर देखा।

एक लड़की बैठी थी आम की डाली पर। सफेद कुर्ती, लंबे बाल, और आँखों में एक अथाह उदासी।

4. पहली मुलाक़ात

"डरा नहीं मुझसे ?" लड़की ने धीरे से पूछा।

अतुल ने हिम्मत करके कहा, "नहीं। मुझे लगता है तू वही है, जिसके बारे में दादी बताया करती थीं।"

लड़की मुस्कुराई। बहुत हल्की सी मुस्कान।

"हाँ, मैं वही हूँ। मरे हुए 80 साल हो गए। तू पहला इंसान है जो डरा नहीं बाकी तो भाग जाते हैं।"

"तू क्यों यहाँ है ?" अतुल ने पूछा।"

मेरा नाम गंगा था। दस साल की थी। माँ बीमार थी, उसे आम खाने का मन हुआ। इसी पेड़ पर चढ़ी। डाली टूट गई। नदी में गिरी। डूब गई। तब से यहाँ हूँ।"

5. भाई की छवि

अतुल ने करीब से देखा। गंगा की आँखों में कुछ था... कुछ जाना-पहचाना

"गंगा, तू मुझे घूर क्यों रही है ?"

गंगा की आँखों से आँसू बहने लगे। वो आँसू ज़मीन पर गिरने से पहले ही गायब हो जाते थे।

"अतुल... तू बिल्कुल मेरे भाई जैसा लगता है।"

"तेरा भाई ?"

गंगा ने धीरे से कहना शुरू किया:

"हाँ, मेरा एक छोटा भाई था। नाम था उसका... भोला। मुझसे पाँच साल छोटा जब मैं मरी, वह पाँच साल का था। उस दिन वह भी मेरे साथ था। नीचे खड़ा था। उसने देखा मुझे गिरते हुए। चीखा, रोया, पर क्या करता ? बच्चा था।"

गंगा की आवाज़ में दर्द था।

"मरने के बाद भी मैं उसे देखती रही। वह रोज़ इसी पेड़ के नीचे आता। बैठा रहता। 'दीदी... दीदी...' पुकारता। पर मैं उसे दिखाई नहीं देती थी। वह बड़ा हुआ, जवान हुआ, गाँव छोड़ गया। फिर कभी नहीं लौटा।"

अतुल का दिल बैठ गया।

"गंगा... तू मुझमें अपना भाई देख रही है ?"

"हाँ अतुल, तेरी आँखें, तेरी आवाज़, तेरा अंदाज़.. बिल्कुल भोला जैसा। शायद इसीलिए मैं तुझसे डर नहीं पाई और न ही तुझे डरा पायी। शायद इसीलिए मैंने तुझसे बात की।"

6. भूत की आपबीती

गंगा ने बताना शुरू किया

"हम तीन भाई-बहन थे। मैं सबसे बड़ी। भोला मुझसे पाँच साल छोटा, और एक बहन और थी चंपा, जो मुझसे तीन साल छोटी। माँ बीमार रहती थीं। बाप खेती करते थे। गरीबी थी, पर प्यार था।"

"उस दिन माँ ने कहा - 'बेटी, आम खाने का मन है।' मैं खुश हो गई। भोला बोला - 'दीदी, मैं भी चलूँगा।'

गंगा रुकी। दर्द से उसका चेहरा बिखर गया।

"मरते वक्त सिर्फ भोला याद आया। उसका चेहरा। उसकी हँसी। उसकी वो आवाज़ 'दीदी, मुझे भी आम खिलाना।' और मैं उसे आम नहीं खिला पाई। कभी नहीं।"

7. आत्मीयता का पल

अतुल की आँखें नम थीं।

"गंगा, तूने भोला को फिर कभी देखा ?"

"देखा। सालों बाद। वह जवान हुआ तो एक बार इसी रास्ते से गुजरा। पर मैं उसे दिखाई नहीं दी। उसके साथ उसकी पत्नी थी, बच्चे थे। खुश था। मैंने उसे आशीर्वाद दिया। पर खुद को रोक नहीं पाई। उससे मिलने का मन किया। उसे गले लगाने का मन किया। उसे बताने का मन किया कि मैं उसकी दीदी हूँ, यहीं हूँ, उसे देख रही हूँ।"

"और अब ?"

"अब तो भोला भी इस दुनिया में नहीं है। बीस साल पहले गुजर गया। मैंने उसकी आत्मा को जाते देखा। वह मुझे दिखाई दिया। मुस्कुराया। बोला 'दीदी, मैं आ रहा हूँ तुम्हारे पास।' पर वह यहाँ नहीं आया। कहीं और चला गया। शायद वहाँ जहाँ मुझे जाना था, पर जा नहीं पाई।"

गंगा फूट-फूटकर रोई।

अतुल, तू बिल्कुल भोला जैसा है। वही आँखें। वही आवाज़। वही प्यार क्या तू... क्या तू मुझे एक बार गले लगा सकता है ? भाई की तरह ?

8. गले का मिलन

अतुल उठा पेड़ के पास गया। गंगा हवा की तरह नीचे उतरी।

दोनों ने एक-दूसरे को गले लगाया।

गंगा बर्फ सी ठंडी थी, पर उस ठंडक में एक अजीब सी गर्माहट थी। वह गर्माहट जो सिर्फ अपनों में होती है। भाई बहन के रिश्ते में होती है।

"धन्यवाद अतुल 70 साल बाद किसी ने मुझे गले लगाया। 70 साल बाद मुझे अपना भाई मिला।"

उसने अतुल के सिर पर हाथ रखा। आशीर्वाद दिया।

"गंगा, तू मेरी बहन है। आज से हमेशा के लिए।"

9. एक खंडर की सैर

"अतुल, चल तुझे अपना घर दिखाऊँ ?" गंगा ने हाथ पकड़ा। दोनों पहाड़ी पर चढ़े। वहाँ एक पुरानी, टूटी-फूटी सी झोपड़ी थी। दीवारों पर काई, टूटे दरवाज़े, उखड़ी छत।

"यह मेरा घर था। यहाँ मैं पैदा हुई। यहाँ खेली। यहाँ माँ ने गोद में खिलाया यहाँ भोला पैदा हुआ। देख, वह चारपाई... वहीं माँ लेटती थीं। वह चूल्हा... वहीं माँ रोटी बनाती थीं। और वह कोना... वहाँ मैं और भोला सोते थे।"

गंगा हर चीज़ छू रही थी। हर चीज़ से प्यार कर रही थी।

"अतुल, क्या तू यहाँ कभी आएगा ?"

"हाँ गंगा। जब भी दुगड़ा आऊँगा, तुझसे मिलने जरूर आऊँगा। तू मेरी बहन जो है।"

गंगा मुस्कुराई। इस बार खिलखिलाकर।

10. दर्दनाक अंत

रात गहरी हो चली थी।

"अतुल, अब तू जा। यहाँ रात को ठंड बहुत है।"

"गंगा, मैं कल फिर आऊँगा।"

गंगा की आँखों में उदासी आ गई।

"अतुल, कल मैं यहाँ नहीं होऊँगी।"

"क्यों ?"

"आज तू मिला। तूने मुझे गले लगाया। भाई बन गया। मेरी सारी तड़प मिट गई। अब मैं जा सकती हूँ ।शांति मिली तो मोक्ष मिल गया।"

अतुल की आँखों से आँसू बहने लगे।

"मत जा गंगा... अभी तो मिले हैं हम। अभी तो बहन भाई बने हैं।"

"हर मिलन का अंत होता है अतुल। पर हमारा प्यार हमेशा रहेगा। जब भी इस आम डाली के नीचे बैठना, जब भी नदी की आवाज़ सुनना, समझना मैं हूँ। हवा में, पानी में, पत्तों की सरसराहट में। और जब कभी किसी बहन को किसी भाई से प्यार करते देखना, समझना मैं वहाँ हूँ।"

धीरे-धीरे वह पारदर्शी होने लगी।

"भैया... कहूँ भैया ? कह सकती हूँ तुम्हें भैया अतुल ?"

अतुल सिसक पड़ा। "हाँ गंगा, कह। मैं तेरा भैया हूँ।"

"भैया... धन्यवाद। मुझे भाई मिल गया। मेरा भोला मिल गया।

अब मैं जा रही हूँ। खुश रहना। अपना ख्याल रखना। और हाँ... जब कभी आम खाना, तो मुझे याद कर लेना।"

और वह गायब हो गई।

बस एक ठंडी हवा का झोंका आया, जैसे किसी बहन ने आखिरी बार भाई के माथे पर हाथ फेरा हो।

11. आज

आज अतुल साठ साल का है। जब भी दुगड़ा जाता है, उस आम डाली के नीचे जरूर बैठता है। हाथ में आम लेकर बैठता है। एक टुकड़ा खुद खाता है, एक टुकड़ा हवा में उछाल देता है।

"ले गंगा, आम खा। याद है तूने माँ के लिए तोड़ा था ? आज मैं तुझे खिला रहा हूँ। मैं तेरा भैया हूँ न ?"

हवा में सरसराहट होती है। पत्ते हिलते हैं। नदी का पानी कल-कल करता है। और अतुल को लगता है, जैसे कोई कह रहा हो

भैया आ गए ? बैठो, बातें करें। और हाँ.. आम बहुत मीठा है। धन्यवाद।

अतुल मुस्कुरा उठता है।

हवा में, पानी में, पत्तों में एक बहन अब भी ज़िंदा है। एक भाई के प्यार में

12. उपसंहार

रिश्ते सिर्फ जीवित से नहीं होते। कभी-कभी कोई आत्मा सालों इंतज़ार करती है, सिर्फ इसलिए कि उसे एक भाई का प्यार चाहिए। इंसानियत यही सिखाती है डर के पार देखो, शायद वहाँ कोई तुम्हारा ही इंतज़ार कर रहा हो।

अतुल नैथानी

कुल्हाड़ मोड़ : वो खामोश गवाह
(कोटद्वार–पौड़ी मार्ग पर एक भावनात्मक लघु कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। कुल्हाड़ मोड़ की लोककथाओं और वास्तविक घटनाओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. वो मोड़

कोटद्वार से पौड़ी जाने वाली सड़क पर गुमखाल से नीचे उतरते ही एक मोड़ आता है कुल्हाड़ मोड़। नाम भी अजीब है। कहते हैं मोड़ इतना तीखा था कि कुहाड़ी की धार जैसा काटता था। एक तरफ ऊँची पहाड़ी, दूसरी तरफ गहरी खाई। और बीच में सड़क बस इतनी चौड़ी कि एक वाहन मुश्किल से निकल पाए।

1960 से 1995 के बीच इस मोड़ का नाम 'भुतिया मोड़' पड़ गया था। बसें, जीपें, ट्रक कितने ही वाहन यहाँ से लौटकर नहीं आए। हर बार कोई न कोई दुर्घटना। हर बार कोई न कोई चीख और हर बार यही सवाल क्यों?

2. रमेश भैया

रमेश उन दिनों प्राइवेट बस में कंडक्टर था। बस चलती थी कोटद्वार से पौड़ी रोज़ का सफर। रोज़ का वही मोड़।

"भैया, डर नहीं लागत ?" एक दिन किसी सवारी ने पूछा था। रमेश हँसा था, "डर के, क्या होता है ? यह तो रोज़ की रोटी है।" पर उस दिन के बाद उसने कभी हँसना नहीं सीखा।

3. वो रात

बात है 1985 की। जुलाई का महीना। बारिश रुकने का नाम नहीं ले रही थी। रमेश की बस पौड़ी से कोटद्वार लौट रही थी। आखिरी सवारी थी एक महिला अपनी गोद में नन्ही बच्ची लिए सतपुली से बैठी। बच्ची बुखार में तप रही थी। महिला के आँसू थम नहीं रहे थे।

बस भैया, जल्दी चलाओ। मेरी बच्ची को कोटद्वार हॉस्पिटल ले जाना है

रमेश ने ड्राइवर से कहा, "भाई, जरा जल्दी चला। बच्ची बहुत बीमार है।"

पर उस रात बारिश और तेज़ हो गई। सड़क फिसलन भरी हो गई। विजिबिलिटी इतनी कम कि आगे कुछ दिखता नहीं था।

कुल्हाड़ मोड़ आते-आते...

"बचाओ..."

एक चीख। एक धमाका। फिर सन्नाटा।

बस 200 फीट नीचे खाई में जा गिरी ।

4. रमेश भैया की वापसी

रमेश बच गया। कैसे बच गया, खुद नहीं जानता। पर उस रात की चीखें उसके कानों में हमेशा के लिए बस गईं।

वह महिला नहीं बची। उसकी नन्ही बच्ची भी चली गई। ड्राइवर भी। बस में सवार 18 लोगों में से सिर्फ 4 बचे और रमेश उनमें से एक था।

उसके बाद रमेश ने कभी बस में पैर नहीं रखा। कोटद्वार-पौड़ी मार्ग पर उसने जाना छोड़ दिया। पर एक चीज़ नहीं छोड़ी हर साल जुलाई की उस रात, वह कुल्हाड़ मोड़ पर जाता है।

5. भूतिया मोड़ की आत्माएँ

गाँव वाले कहते थे, रमेश पागल हो गया है। उसे भूत लग गए हैं। पर रमेश जानता था वह भूतों से नहीं, यादों से मिलने जाता है।

"क्या करते हो वहाँ जाकर ?" किसी ने पूछा तो रमेश बोला "दीया जलाता हूँ। उन सबके नाम का। जो उस रात चले गए। वो बच्ची... उसकी माँ... ड्राइवर भाई... और वो सारे लोग जो कभी अपने घर नहीं पहुँच पाए।"

उसने बताया एक बार मुझे लगा, वो महिला आई। उसी सफेद साड़ी में। गोद में वही बच्ची। बोली 'हमें माफ कर दो भैया, तुम्हारी कोई गलती नहीं थी।' मैं रो पड़ा। उस दिन के बाद से मुझे डर नहीं लगता। वहाँ कोई भूत नहीं, बस कुछ अधूरी आत्माएँ हैं जिन्हें किसी के याद करने का इंतज़ार है।

6. दर्दनाक मुलाकातें

एक बार रमेश वहाँ बैठा था तो एक बुज़ुर्ग औरत आई। वह भी दीया जलाने

"तुम भी किसी को याद करते हो ?" रमेश ने पूछा।

"हाँ बेटा। मेरा बेटा। 1988 में उस दिन पौड़ी से कोटद्वार आ रहा था। जीप थी उसकी। कुल्हाड़ मोड़ पर... बस इतना पता चला कि जीप खाई में गिरी। तीनों दोस्त चले गए। मेरा बेटा भी। उस दिन के बाद से हर अमावस्या को यहाँ दीया जलाती हूँ।"

रमेश चुप रहा। फिर बोला माँ, आज से मैं भी आपके बेटे के नाम का दीया जलाऊँगा।" उस बुज़ुर्ग औरत ने रमेश को आशीर्वाद दिया। दोनों रोए। वहाँ कोई भूत नहीं था, बस दो टूटे दिल थे।

7. एक और कहानी

एक दिन रमेश ने देखा एक आदमी वहाँ खड़ा था। बस खड़ा था, नीचे खाई में देख रहा था। घंटों खड़ा रहा।

रमेश उसके पास गया। "भाई साहब, ठीक तो हो ?"

आदमी मुड़ा। आँखें सूजी हुई थीं।

"मेरा भाई... उसका नाम सुरेश था। 1975 की बात है। उसकी शादी थी अगले महीने। बारात लेने कोटद्वार से पौड़ी जा रहा था। जीप थी। यहीं... यहीं मोड़ पर... अब वह नहीं रहा। आज 20 साल हो गए। आज पहली बार यहाँ आ पाया हूँ।"

रमेश ने उसे गले लगा लिया। "भाई, आज से मैं तुम्हारा भाई हूँ। और हर साल यहाँ दीया जलाऊँगा सुरेश भाई के नाम का।"

8. अतुल की यात्रा

अतुल उन दिनों दुगड़ा में रहता था। उसने बचपन में सुना था कुल्हाड़ मोड़ पर भूत हैं। दादी ने बताया था "बेटा, उस मोड़ पर मत जाना। वहाँ कई आत्माएँ भटकती हैं।" पर अतुल को वहाँ जाना था।

1973 का साल था। उसके चाचा की बस उसी मोड़ पर दुर्घटनाग्रस्त हुई थी। चाचा और ड्राइवर नहीं बचे ड्राइवर के तीन बच्चे थे। सबसे छोटी बच्ची सिर्फ दो साल की। चाचा जी तो शादी के लिए लड़की देखने आ रहे थे

अतुल वहाँ गया सालों बाद। दीया जलाया, चाचा जी ओर ड्राइवर की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की।

वहाँ बैठा था तो उसे लगा, जैसे कोई फुसफुसाया "धन्यवाद बेटा। मेरे बच्चों की जिम्मेदारी संभाल ली थी तेरे दादाजी और परिवार ने। अब मैं जा सकता हूँ।" वर्षों से इंतज़ार कर रहा था यह धन्यवाद देने का। लगा ड्राइवर और चाचा जी उसे देख रहे हो

अतुल चौंका। इधर-उधर देखा। कोई नहीं था। पर उसे लगा, जैसे कोई उसे आशीर्वाद दे रहा हो। पत्तों में सरसराहट थी हवा हल्के से बह रही थी। और अचानक ऐसा लगा कोई छू के निकल गया हो कोई अपना सा।

9. आज का कुल्हाड़ मोड़

समय बदला। सड़कें चौड़ी हुईं। कुल्हाड़ मोड़ को ठीक कर दिया गया। अब वहाँ मोड़ उतना तीखा नहीं रहा । पर आज भी, जब भी कोई पुराना ड्राइवर या कंडक्टर उस मोड़ से गुजरता है, तो गाड़ी धीमी कर लेता है। एक पल रुकता है। मन ही मन कुछ कहता है।

कहते हैं आज भी अमावस्या की रात को वहाँ दिए जलते हैं। कोई जलाता है तो कोई नहीं जानता। पर दिए जलते हैं। रमेश अब इस दुनिया में नहीं है पर उसकी कहानियाँ आज भी ज़िंदा हैं। कुल्हाड़ मोड़ पर बैठे ड्राइवर आज भी बताते हैं एक रमेश भैया थे। हर अमावस्या को यहाँ आते थे। दीया जलाते थे। सबके नाम का। वो कहते थे 'यहाँ कोई भूत नहीं है भाई। यहाँ तो बस कुछ रूहें हैं, जिन्हें किसी के याद करने का इंतज़ार है।'"

10. अतुल की वापसी

साल 2025। अतुल अब 60 साल का हो चुका है। वह फिर दुगड़ा आया कुल्हाड़ मोड़ पर गया। वहाँ एक पुराना ड्राइवर मिला।

"भाई साहब, रमेश भैया को जानते हो ?"

ड्राइवर की आँखें नम हो गईं। "रमेश भैया... वो तो 10 साल पहले गुजर गए। पर उनकी कहानी आज भी ज़िंदा है। उन्होंने सिखाया था इस मोड़ पर गाड़ी धीमी चलाना। और हाँ, हर साल उस तारीख को दीया जलाना, जिस दिन यहाँ कोई हादसा हुआ था।"

अतुल ने दीया जलाया। चाचा जी के नाम के, अंजान लोगों के नाम का। उस महिला के नाम का। उस बच्ची के नाम का। और उन सबके नाम का, जो कभी इस मोड़ से लौटकर नहीं आए।

हवा में एक सरसराहट हुई। जैसे किसी ने कहा हो "धन्यवाद।" अब हम सब को मुक्ति मिल गई। अब हम सब बस यादों मैं ही रहेंगे

अतुल मुसकुराया। उसे लगा, जैसे सारी आत्माओं को शांति मिल गई हो।

11. उपसंहार

आज कुल्हाड़ मोड़ सुरक्षित है। सड़क चौड़ी है। मोड़ ठीक है। पर आज भी, जब कभी कोई बस या जीप वहाँ से गुज़रती है, तो ड्राइवर हॉर्न बजाता है।

एक लंबा हॉर्न।

जैसे कह रहा हो "हम याद करते हैं तुम्हें। हम भूलेंगे नहीं।" और हवा में, पहाड़ों की गूंज में, उन आत्माओं की फुसफुसाहट सुनाई देती है

"हम भी याद रखेंगे। हम भी।"

कभी-कभी कोई जगह सिर्फ जगह नहीं होती। वह यादों का मंदिर होती है उनकी यादों का, जो चले गए, पर हमारे दिलों में हमेशा ज़िंदा हैं। कुल्हाड़ मोड़ आज भी उन यादों का खामोश गवाह है।

अतुल नैथानी

दारू वाली : पहाड़ की वो औरत
(एक पहाड़ी लघु कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। पहाड़ी पृष्ठभूमि और लोक-जीवन से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ की ढलान पर

दुगड़ा से आगे, जहाँ सड़क पहाड़ी से सटकर निकलती है, वहाँ एक छोटी-सी दुकान थी। न तो उसका कोई बोर्ड था, न कोई नाम। बस एक टीन की छत, चार खम्भे, और अंदर लकड़ी की एक लम्बी बेंच।

लोग उसे 'दारू वाली की दुकान' कहते थे।

दारू वाली को किसी ने उसका असली नाम पूछा नहीं। वह 'दारू वाली' के नाम से ही मशहूर हो गई। पर वह सिर्फ दारू नहीं बेचती थी। वह दर्द बेचती थी, तन्हाई बेचती थी, और कभी-कभार कुछ पलों की खुशी भी।

2. दारू वाली कौन थी ?

उसका नाम मधु था। पर किसी को याद नहीं कि उसे किसी ने मधु कहकर बुलाया हो।

बहुत साल पहले की बात है। मधु का पति लकड़ी का ठेका लेकर जंगल गया था। उस दिन बारिश बहुत तेज थी। पहाड़ी से पत्थर गिरे। उसके पति की लाश मिली तो पहचानना भी मुश्किल था।

मधु उस दिन से अकेली हो गई। कोई बच्चा नहीं। कोई सहारा नही। बस वह झोंपड़ी और पति की यादें।

कुछ महीनों बाद उसने सड़क किनारे यह छोटी-सी दुकान खोल ली। पहले चाय-बिस्कुट। फिर धीरे-धीरे देसी शराब भी रखने लगी। पहाड़ों में ठंड बहुत पड़ती है, और आदमियों को गर्मी चाहिए थी।

3. ग्राहक

दारू वाली की दुकान पर हर तरह के लोग आते थे।

कोई आता तो घंटों चुप बैठा रहता। कोई आता तो रोता। कोई आता तो गालियाँ देता। कोई आता तो बस एक गिलास माँगता और चला जाता।

मधु सबको चुपचाप देखती। वह किसी से कुछ नहीं पूछती थी। बस जब कोई बहुत ज़्यादा पी लेता, तो धीरे से कहती "बहुत हो गया भैया, अब घर जाओ। बीबी-बच्चे इंतज़ार करते होंगे।"

कई लोग मान जाते। कई नहीं मानते। जो नहीं मानते, उनके लिए उसके पास एक और सीख थी जो अपनों को दुख दे, उसे दारू सुख नहीं दे सकती।

4. भीम सिंह

भीम सिंह उस दुकान पर रोज़ आता था। सुबह-सुबह आता, एक पैग लगाता, और चला जाता। दोपहर में फिर आता। शाम को फिर।

मधु ने एक दिन पूछ ही लिया "भीम सिंह, तू रोज़ क्यों आता है ?"

भीम सिंह ने गिलास टेबल पर रखा। आँखें भर आईं।

"दारू वाली, मेरी बीबी मर गई । पिछले साल। बच्चा है एक, पाँच साल का। सास-ससुर ने निकाल दिया बच्चे को रख लिया। मजदूरी करता हूँ। कमाता हूँ। पर रात को नींद नहीं आती। बस यही एक सहारा है।"

मधु चुप रही। फिर उसने एक गिलास और भर दिया। पर इस बार पानी कम था।

"भीम सिंह, सुन। तेरी बीबी तुझे ऊपर से देख रही है। वह चाहती है कि तू अपने बच्चे को संभाले। दारू से क्या होगा ? कल से कम पीना। और अपने बच्चे के लिए जीना।"

भीम सिंह ने उस दिन के बाद आना कम कर दिया। छह महीने बाद वह एक बार आया, साफ कपड़ों में। बोला "दारू वाली, मैंने नौकरी कर ली। अब ठीक हूँ। तेरा आशीर्वाद।"

मधु मुस्कुराई। वह मुस्कान देखने लायक थी।

5. जवान लड़का

एक दिन एक जवान लड़का आया। उम्र शायद बीस-बाईस साल। हाथ में एक पुराना बैग, चेहरे पर उदासी।

उसने गिलास माँगा। पी लिया। फिर माँगा। फिर पी लिया।

मधु ने देखा, लड़का रो रहा है।

"क्या हुआ बेटा ?" उसने धीरे से पूछा।

लड़का फूट-फूटकर रो पड़ा।

"माँ मर गई मेरी।

कल थी, आज नहीं। पिता नहीं है। कोई नहीं है। अकेला रह गया हूँ।"

मधु उठी। उस लड़के के पास गई। उसके सिर पर हाथ रखा।

"रो ले बेटा। रो ले। माँ का दर्द रोकर ही निकलता है।"

लड़का उसकी गोद में सिर रखकर रोता रहा। मधु की आँखें भी नम थीं। शायद उसे अपना पति याद आ गया। शायद वह बच्चा जो कभी हुआ ही नहीं।

उस दिन के बाद वह लड़का कभी नहीं आया। पर मधु को यकीन था वह ठीक होगा।

6. मजिस्ट्रेट साहब

एक दिन एक जीप आकर रुकी। उसमें से एक बड़े आदमी उतरे। सूट-बूट पहने। हाथ में चमड़े का बैग। पीछे-पीछे दो लोग और।

गाँव वाले सहम गए। पता चला मजिस्ट्रेट साहब हैं। छापा मारने आए हैं।

मधु की दुकान पर छापा पड़ा। दारू जब्त हुई। मधु को थाने ले जाने की बात हुई।

तभी वहाँ एक बुज़ुर्ग आदमी आया। धीरे-धीरे चलता हुआ। लाठी के सहारे।

"मजिस्ट्रेट साहब, एक मिनट सुनिए।"

मजिस्ट्रेट ने घूमकर देखा।

"बोलिए।"

"यह औरत कोई अपराधी नहीं है साहब। इसका पति मर गया। अकेली है दुकान न होती तो यह भूखी मर जाती। हाँ, यह दारू बेचती है। पर क्या आप जानते हैं, इसने कितनों को बचाया है ? कितने पति अपनी पत्नी के पास लौटे हैं इसकी वजह से ? कितने बाप अपने बच्चों के पास ?"

मजिस्ट्रेट साहब चुप रहे।

उस बुज़ुर्ग ने आगे कहा "साहब, कानून-कानून होता है। पर इंसानियत भी कुछ होती है। इस औरत ने कभी किसी नाबालिग को दारू नहीं दी। कभी किसी को ज़्यादा पीने नहीं दिया। यह डॉक्टर से कम नहीं है इस गाँव के लिए।"

मजिस्ट्रेट ने मधु की ओर देखा। मधु की आँखों में न डर था, न गिड़गिड़ाहट बस एक स्थिरता।

"चलिए, मजिस्ट्रेट ने कहा, इस बार छोड़ दिया। पर लाइसेंस बनवा लो।"

मधु ने हाथ जोड़े। "धन्यवाद साहब।"

7. दारू वाली की बीमारी

एक दिन अचानक दुकान नहीं खुली। दूसरे दिन भी नहीं। तीसरे दिन भी नहीं।

गाँव वाले चिंतित हुए। भीम सिंह, वही जो पहले रोज़ आता था, गया झोंपड़ी पर। देखा मधु बीमार पड़ी है। तेज़ बुखार। उठने की हालत नहीं।

भीम सिंह ने उसे अस्पताल पहुँचाया। डॉक्टर ने कहा "ठीक हो जाएँगी, पर आराम चाहिए।"

खबर फैली। गाँव के लोग आने लगे। जिन्होंने कभी उसका नाम तक नहीं पूछा था, वे आज उसे देखने आए। कोई फल लाया, कोई दूध, कोई पैसे।

एक औरत आई, रोती हुई। "दारू वाली ने मेरे पति को बचाया था। वह रोज़ पीता था, मुझे मारता था। एक दिन यहाँ आया तो दारू वाली ने उसे समझाया। आज वह ठीक है।"

एक बूढ़ा आया। "मेरा बेटा विदेश जा रहा था, आखिरी बार मिलने आया यहीं बैठा था। दारू वाली ने उसे आशीर्वाद दिया। आज वह अमेरिका में है।"

मधु ने सुना। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

8. अतुल की मुलाकात

अतुल उन दिनों दुगड़ा में था। उसने यह कहानी सुनी। उसे दारू वाली से मिलने का मन हुआ।

वह उसकी झोंपड़ी पर गया। मधु अब ठीक हो चुकी थी। दुकान फिर से खुल गई थी।

"बैठ बेटा," मधु ने कहा। "चाय पिएगा ?"

"चाय पी लूँगा।"

चाय आई। अतुल ने पूछा "तुम यह सब क्यों करती हो ? लोगों की मदद क्यों करती हो ?"

मधु ने दूर पहाड़ों में देखा। फिर धीरे से बोली

बेटा, मेरा कोई नहीं है। मेरा पति मर गया। कोई बच्चा नहीं। पर ये लोग... ये सब मेरे अपने हैं। जब कोई दुखी आता है, तो मुझे अपना दुख कम लगता है। जब कोई रोता है, तो मैं उसके आँसू पोंछ सकती हूँ। यही मेरा धर्म है

"पर दारू बेचकर ?" अतुल ने पूछा।

मधु मुस्कुराई। "बेटा, दारू बुरी चीज़ है। मैं जानती हूँ। पर यहाँ पहाड़ों में, ठंड में, अकेलेपन में, लोगों को एक सहारा चाहिए। मैं उन्हें सहारा देती हूँ और जब बहुत हो जाए, तो रोक भी देती हूँ। दारू तो बहाना है। असली काम तो इंसानियत का है।"

9. वह रात

एक रात बहुत तूफान था बारिश इतनी तेज़ कि लगता था पहाड़ बह जाएगा।

देर रात को दरवाज़े पर दस्तक हुई। मधु ने खोला। सामने एक आदमी खड़ा था, भीगा हुआ, काँपता हुआ।

"बचा लो दीदी। मुझे बचा लो।"

मधु ने उसे अंदर बिठाया। गर्म कपड़े दिए। चाय दी।

आदमी ने बताया वह शहर से भागकर आया है। कर्ज़ में डूबा था। पत्नी ने छोड़ दिया। बच्चे ससुराल चले गए। वह आत्महत्या करने जा रहा था।

मधु ने उसे समझाया। सुबह तक बातें करती रही।

सुबह वह आदमी गया। जाते-जाते बोला "दीदी, तूने मुझे जीना सिखा दिया।"

मधु ने आशीर्वाद दिया। फिर दुकान खोल दी। नए ग्राहक का इंतज़ार करने लगी।

10. अंतिम दिन

सालों बीत गए। मधु बूढ़ी हो गई। अब वह उठ नहीं पाती थी। दुकान बंद हो गई।

पर लोग आज भी उसके पास आते थे। कोई सलाह लेने, कोई आशीर्वाद लेने, कोई बस उसे देखने।

एक दिन मधु ने अतुल को बुलाया।

"बेटा, मैं अब जा रही हूँ।"

"कहाँ ?"

"जहाँ से कोई नहीं लौटता। पर जाने से पहले एक बात कहूँगी।"

"बोलो।"

"मैंने जीवन भर दारू बेची। पाप कमाया। पर मैंने लोगों को भी बचाया। मेरे पास कोई नहीं था, पर मैं अकेली नहीं थी। ये सारे लोग, ये सारी रूहें, ये सारी कहानियाँ यही मेरा परिवार था।"

अतुल की आँखें नम थीं।

"बेटा, याद रखना इंसानियत सबसे बड़ा धर्म है। और एक औरत जब अकेली होती है, तो वह सबकी माँ होती है।"

11. उपसंहार

आज उस जगह पर वह दुकान नहीं है। न टीन की छत है, न लकड़ी की बेंच। पर लोग आज भी उस जगह से गुजरते हैं तो रुक जाते हैं।

कोई सिर झुकाता है, कोई हाथ जोड़ता है, कोई बस एक पल के लिए आँखें बंद कर लेता है।

क्योंकि वह जगह अब सिर्फ जगह नहीं है। वह एक मंदिर है इंसानियत का मंदिर। अतुल आज भी जब दुगड़ा जाता है, तो उस जगह पर जरूर रुकता है। एक पल खड़ा रहता है। और उसे लगता है, जैसे कोई कह रहा हो

"आ गए बेटा ? चाय पिएगा ?"

12. संदेश

इस दुनिया में हर इंसान की अपनी एक कहानी है। जिन्हें हम लेबल लगा देते हैं दारू वाली, भिखारिन, अकेली औरत उनके अंदर भी एक इंसान होता है। कभी-कभी वही इंसान हमारी सबसे बड़ी मदद कर सकता है। इसलिए किसी को मत आँको। बस इंसानियत से पेश आओ।

अतुल नैथानी

'छल' – वो छाया जो साथ चलती है
(पहाड़ की एक लोक कथा)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। पहाड़ी लोककथाओं और परंपराओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

पहाड़ों में एक कहावत है "हर छाया परछाई नहीं होती, कोई-कोई छाया इंसान के अभिमान का सबक होती है।" यह कहानी है एक ऐसी ही छाया की, जिसे लोग 'छल' कहते थे। न वह भूत था, न प्रेत। वह बस एक छाया थी उनके अभिमान की, उनके अंधेपन की, उनके किए की।

1. पहाड़ का गाँव

दुगड़ा से थोड़ा ऊपर, जहाँ बादल घरों से होकर गुजरते थे, वहाँ एक छोटा-सा गाँव था याली। चारों तरफ बुरांश के जंगल, और बीच में पत्थरों से बने छोटे-छोटे घर।

गाँव के बाहर, एक पुराने पीपल के पेड़ के नीचे, एक अजीब-सी छाया थी दिन में भी वहाँ अँधेरा रहता था। लोग कहते थे वहाँ मत जाओ। वहाँ 'छल' रहता है। पर किसी ने उसे देखा नहीं था। बस सुना था।

2. अभिमानी धन सिंह

गाँव में एक नाम था धन सिंह। नाम के अनुरूप ही था वह। गाँव का सबसे अमीर आदमी। उसके पास जितनी ज़मीन थी, उतनी पूरे गाँव में किसी के पास नहीं। उसके खलिहान अनाज से भरे रहते थे। उसकी कोठी सबसे ऊँची थी।

पर धन सिंह के पास वो नहीं था, जो सबसे ज़रूरी है नम्रता।

"मैं इस गाँव का राजा हूँ," वह कहता था। मेरे आगे किसी की नहीं चलती

गरीब किसानों से वह ब्याज वसूलता। मजदूरों को उनकी मजदूरी नहीं देता बुज़ुर्गों का आदर नहीं करता। औरतों से बात करते समय उसकी नज़रें नीची नहीं होती थीं।

"धन, रात को देर तक मत बैठा करो," उसकी बूढ़ी माँ कहती। "पहाड़ों में अकेले घूमना ठीक नहीं।"

"चुप रहो बुढ़िया!" धन सिंह चिल्लाता। "मुझे कौन डराएगा ? मैं धन सिंह हूँ। " और उसकी माँ चुप हो जाती।

3. पीपल के पेड़ की छाया

एक दिन धन सिंह शाम को शिकार पर निकला। हाथ में बंदूक, कंधे पर शिकार का थैला। घंटों भटकता रहा, पर कुछ हाथ नहीं लगा।

शाम ढल गई। अँधेरा घिरने लगा।

धन सिंह ने देखा सामने वही पीपल का पेड़ था, जिसके बारे में लोग कहते थे, वहाँ छल रहता है।

"बकवास!" उसने मन ही मन कहा। "ये लोग अंध विश्वासी हैं। मैं धन सिंह हूँ। मुझसे कौन डरा सकता है ?"

वह पेड़ के नीचे बैठ गया। आराम करने लगा।

तभी...

"धन सिंह..."

एक आवाज़ आई। बहुत धीमी। बहुत गहरी।

धन सिंह चौंका। इधर-उधर देखा। कोई नहीं था।

"कौन है वहाँ ?" उसने ज़ोर से पूछा।

कोई जवाब नहीं।

उसने सोचा, मन का धोखा है। फिर से आँखें बंद कर लीं।

4. छल का प्रकट होना

"धन सिंह... तू मुझे देखना चाहता है ?"

इस बार आवाज़ पास थी। बहुत पास।

धन सिंह ने आँखें खोलीं। उसने देखा उसके सामने एक छाया खड़ी थी। न कोई आकार, न कोई रूप। बस एक छाया। पर उस छाया में आँखें थीं। दो चमकती हुई आँखें।

"तू... तू कौन है ?" धन सिंह की आवाज़ काँप रही थी।

"मैं छल हूँ। तुम लोग मुझे भूत कहते हो। पर मैं न भूत हूँ, न प्रेत। मैं तो बस एक छाया हूँ हर उस इंसान की, जो अभिमान में अंधा हो जाता है।"

धन सिंह ने बंदूक उठाई। "भाग यहाँ से, नहीं तो गोली मार दूँगा!"

छल हँसा। उसकी हँसी में पूरा जंगल गूँज उठा।

"मुझे गोली नहीं लगती धन सिंह। मैं तो तेरे अंदर हूँ। तेरे अभिमान में हूँ। तेरे अंधेपन में हूँ। तू मुझे मार नहीं सकता।"

5. छल का उपदेश

धन सिंह डर गया। बंदूक उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ी।

"तू... तू क्या चाहता है मुझसे ?"

"मैं कुछ नहीं चाहता धन सिंह। मैं तो बस याद दिलाता हूँ।"

"क्या याद दिलाता है ?"

छल ने धीरे से कहना शुरू किया:

"मैं न किसी से धन माँगता हूँ,

ना बलि, ना पूजा।

मेरा धर्म बस एक है

मनुष्य को उसकी मर्यादा याद दिलाना।

अगर तुम्हारा मन साफ है,

बड़ों का आदर है,

रात की सावधानी है,

तो मुझसे डरने की ज़रूरत नहीं।

लेकिन अगर तुम अंधे अभिमान में हो,

तो मैं छाया बनकर तुम्हारे साथ चलूँगा...

और एक दिन...

खुद को ही खुद से डरा दूँगा।"

धन सिंह के पैरों तले ज़मीन खिसक गई।

"तू... तू मेरे साथ क्यों आया ?"

"क्योंकि तू अभिमानी है धन सिंह। तू गरीबों का शोषण करता है। तू बुज़ुर्गों का आदर नहीं करता। तू औरतों को नीची नज़र से देखता है। तूने अपनी माँ को बुढ़िया कहा। तूने मजदूरों की मज़दूरी दबा ली। तेरा अभिमान सातवें आसमान पर है। इसलिए मैं तेरे साथ हूँ।"

6. छल का साथ

उस रात के बाद से छल धन सिंह के साथ हो लिया।

जहाँ भी धन सिंह जाता, छल उसकी परछाईं बनकर उसके साथ चलता। खेतों में, बाज़ार में, घर में हर जगह।

पहले तो धन सिंह डरता रहा। फिर उसे आदत हो गई। पर छल चुप नहीं बैठता था। जब भी धन सिंह कोई गलत काम करता, छल उसे याद दिलाता

"याद रख धन सिंह, यह कर्म तेरे साथ चलेगा।"

धन सिंह की नींद उड़ गई। उसे खाना हज़म नहीं होता था। उसका चेहरा पीला पड़ गया।

एक दिन उसने पूछा, "छल, तू जाएगा कब ?"

"जब तू बदलेगा धन सिंह। जब तेरा अभिमान जाएगा, मैं भी जाऊँगा।"

7. बदलाव की शुरुआत

धन सिंह ने सोचा। उसने अपने जीवन पर नज़र डाली। उसे एहसास हुआ उसने कितने गलत काम किए हैं।

पहला कदम उसने गरीब किसानों का कर्ज़ माफ कर दिया।

छल ने देखा। कहा "अच्छा किया धन सिंह। पर अभी बाकी है।"

दूसरा कदम उसने मजदूरों को उनकी बाकी मज़दूरी दी। दुगनी दी।

छल मुस्कुराया। "अच्छा। पर अभी बाकी है।"

तीसरा कदम वह अपनी माँ के पास गया। उसके पैर छुए। "माँ, माफ कर दो मुझे। मैंने बहुत बुरा व्यवहार किया तुम्हारे साथ।"

बूढ़ी माँ ने उसे आशीर्वाद दिया। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। "बेटा, मुझे तुम्हारा इंतज़ार था।"

8. आखिरी मुलाकात

एक दिन धन सिंह फिर उस पीपल के पेड़ के नीचे गया। उसे लगा, आज छल उससे आखिरी बार मिलेगा।

वहाँ पहुँचा तो छल पहले से मौजूद था। पर इस बार वह डरावना नहीं लग रहा था। उसकी आँखों में एक अपनापन था।

"धन सिंह, आज मैं जा रहा हूँ।"

"क्यों ?"

"क्योंकि तू बदल गया। तेरा अभिमान गया। तूने बड़ों का आदर करना सीखा। तूने गरीबों की मदद की। तूने अपनी माँ से माफ़ी माँगी। अब तुझे मेरी ज़रूरत नहीं।"

धन सिंह की आँखें नम थीं।

"छल, तू मुझे क्यों मिला ? तू कौन है असल में ?"

छल मुस्कुराया। इस बार बहुत हल्के से।

"मैं हर उस इंसान की ज़मीर हूँ, जो अभिमान में अंधा हो जाता है। मैं उसे याद दिलाता हूँ कि वह इंसान है, भगवान नहीं। मैं उसे सिखाता हूँ कि धन से बड़ा आदर है, ज़मीन से बड़ी नम्रता है। मैं उसका सबक हूँ। और जब सबक सीख जाता है, तो मैं चला जाता हूँ।"

"क्या मैं तुझे फिर कभी देख पाऊँगा ?"

"जब कभी कोई अभिमानी देखना, समझना मैं वहाँ हूँ। उसकी छाया में। उसके अंदर।"

धीरे-धीरे छल पारदर्शी होने लगा।

"धन सिंह, याद रखना "

"मैं न किसी से धन माँगता हूँ,

ना बलि, ना पूजा।

मेरा धर्म बस एक है

मनुष्य को उसकी मर्यादा याद दिलाना।"

और छल गायब हो गया। बस हवा में एक सरसराहट रह गई।

9. नया धन सिंह

धन सिंह बदल गया था। अब वह वैसा नहीं रहा था।

वह गाँव के बच्चों को पढ़ाता। गरीबों की मदद करता। बुज़ुर्गों के पैर छूता, औरतों से आदर से बात करता।

गाँव वाले हैरान थे। "यह वही धन सिंह है ?"

"हाँ," धन सिंह कहता, "पर अब नया धन सिंह। पुराना वहीं उस पीपल के पेड़ के नीचे मर गया।"

10. अतुल की मुलाकात

सालों बाद, अतुल उस गाँव में गया। उसने वह कहानी सुनी। उसे विश्वास नहीं हुआ।

वह उस पीपल के पेड़ के नीचे गया। बैठ गया। शाम ढल रही थी।

"छल... क्या तू सच में है ?" उसने धीरे से पूछा।

एक हवा का झोंका आया। पत्ते सरसराए।

तभी उसे लगा, जैसे कोई कह रहा हो

"मैं न किसी से धन माँगता हूँ,

ना बलि, ना पूजा।

मेरा धर्म बस एक है

मनुष्य को उसकी मर्यादा याद दिलाना।

अगर तुम्हारा मन साफ है,

बड़ों का आदर है,

रात की सावधानी है,

तो मुझसे डरने की ज़रूरत नहीं।

लेकिन अगर तुम अंधे अभिमान में हो,

तो मैं छाया बनकर तुम्हारे साथ चलूँगा...

और एक दिन...

खुद को ही खुद से डरा दूँगा।"

अतुल को समझ आ गया। यह कोई भूत नहीं था। यह तो हर इंसान के की अंदर बैठा उसका विवेक था, जो अभिमान को देखते ही जाग उठता है।

11. उपसंहार

आज भी पहाड़ों में लोग कहते हैं अगर कभी रात को अकेले जाओ और तुम्हें लगे कि कोई तुम्हारी परछाईं में है, तो डरना मत।

बस अपने मन को देखो।

अगर तुम सही हो, तो वह छाया तुम्हें कुछ नहीं कहेगी।

अगर गलत हो, तो वह तुम्हारा सबक सिखाएगी।

क्योंकि वह छाया कोई और नहीं तुम्हारा खुद का विवेक है, तुम्हारे कर्मों का हिसाब है।

और हाँ,

उसका नाम है छल।

अभिमान विनाश का मूल है। जो जितना अभिमानी, उतना ही अकेला। और उसके अकेलेपन में बसती है वह छाया, जो उसे उसकी मर्यादा याद दिलाती है। इसलिए हमेशा नम्र रहो, बड़ों का आदर करो, और रात की सावधानी रखो। बाकी, डरने की कोई ज़रूरत नहीं।

अतुल नैथानी

चम्पा चाची : वो प्यार जो कभी नहीं मरा

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। पहाड़ी लोककथाओं और परंपराओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. बचपन की वो मुलाकात

मैं आज भी उस दिन को नहीं भूल सकता।

बचपन में जब पहली बार चम्पा चाची से मिला, तो उनका प्यार ऐसा लगा जैसे कोई अपनी माँ से मिल रहा हो। वो हंसमुख चेहरा, वो मीठी बातें, वो अपनापन सब कुछ आज भी आँखों के सामने घूम जाता है।

"आ जा बेटा, आ जा। भूखा है क्या ? मिठाई खाएगा ?" उनकी यह बात आज भी कानों में गूंजती है।

पर बचपन में क्या समझ थी ? बस इतना पता था कि चाची बहुत अच्छी हैं, बहुत प्यार करती हैं। उनकी हँसी के पीछे छिपी उदासी का पता तो बहुत बाद में चला। जब हम थोड़े बड़े हुए और ज़िन्दगी को समझने लगे।

2. कौन थीं चम्पा चाची ?

चम्पा चाची हमारे पड़ोस में रहती थीं। असल में वो जगत की चाची थीं, पर गाँव में सब उन्हें चम्पा चाची कहकर बुलाते थे। हर किसी से प्यार से मिलना, हर किसी के दुःख-दर्द में शामिल होना यही उनकी पहचान थी।

जैसा मैंने सुना, उनकी शादी मोतीलाल चाचा से हुई थी। चाचा की पहली पत्नी तीन बच्चों को जन्म देने के बाद चल बसी थीं। छोटे-छोटे बच्चे, कोई माँ नहीं। घर का कौन देखे ?

तब चाचा ने चम्पा चाची से शादी कर ली। चाची उस समय महज़ 19 साल की थीं। चाचा उनसे करीब 14 साल बड़े थे। एक नन्हीं-सी लड़की, जिसे

अभी ज़िन्दगी समझ में आनी शुरू हुई थी, उसे अचानक तीन बच्चों की माँ बनना पड़ा।

सुना है चाची गरीब घर से थीं। पाँच बच्चों का परिवार। शायद इसीलिए उन्होंने यह शादी स्वीकार की थी।

3. चुप्पी और संघर्ष के साल

चाचा की दुकान अच्छी चलती थी। पैसा था, इज़्ज़त थी, सब कुछ था। चाचा भी चाची का बहुत ख्याल रखते थे। मैंने कभी चाचा को चाची से ऊँची आवाज़ में बात करते नहीं देखा। सब कुछ ठीक-ठाक लगता था।

पर चाची के अपने बच्चे नहीं हुए।

शायद यही उनकी सबसे बड़ी वेदना थी। तीन बच्चों को पाला, उन्हें बड़ा किया, उनके लिए माँ बनीं पर वह कभी 'अपनी माँ' नहीं बन पाईं। उन बच्चों का लालन-पालन किया, पढ़ाया-लिखाया, संस्कार दिए। पर क्या वे उन्हें कभी 'माँ' मान पाए ?

समय बीता। बच्चे बड़े हुए। पढ़-लिखकर विदेश चले गए। अच्छी नौकरियाँ कीं। वहाँ शादियाँ कीं। अपनी दुनिया बसा ली।

चाचा बीमार रहने लगे। चाची ने उनकी खूब सेवा की। दिन-रात एक किए रखा। पर चाचा चल बसे।

4. अकेलापन

चाचा के मरने पर बच्चे आए। रस्में निभाईं। चाचा को मुखाग्नि दी। फिर चले गए। अपनी दुनिया में। चाची अकेली रह गईं।

उस विशाल घर में, उन यादों के बीच, एक अकेली औरत।

गाँव में लोग बातें करने लगे। "देखा, कैसे छोड़ गए बच्चे। कोई नहीं पूछता

पर चाची कभी किसी से शिकायत नहीं करती थीं। जब कोई कुछ कहता, तो वह बस इतना बोलतीं "उनकी अपनी लाइफ है बेटा। वे विदेश में हैं। नौकरी है। बच्चे हैं। समय कहाँ है उनके पास ? मैं तो ठीक हूँ।"

पर क्या सच में ठीक थीं ? अकेलेपन में रातें कैसे कटती होंगी, कौन जानता है?

5. आखिरी मुलाकात

मैं आखिरी बार चाची से मिला, जब मुझे खबर मिली कि उन्होंने बुलाया है

गया तो देखा चाची बहुत बूढ़ी हो गई थीं। उम्र करीब 85 साल रही होगी वो चेहरा, जो कभी हँसी से खिलखिलाता था, अब झुर्रियों से भर गया था पर आँखों में वही चमक थी, वही अपनापन।

"आ गए बेटा ? बैठो। तुमसे बात करनी है।"

मैं उनके पास बैठ गया। उन्होंने धीरे-धीरे बातें कीं। पुरानी यादें ताज़ा कीं। फिर अचानक बोलीं

"बेटा, मेरी एक तमन्ना है। तुम बड़े बेटे से बात कर सकते हो ? उसे बुला सकते हो एक बार ?"

मैंने पूछा "क्यों चाची ?"

"बेटा, उसके पिता की कुछ अमानत है। ज़मीन-जायदाद के काग़ज़ात। मुझे उसे सौंपने हैं। मुझे इन चीज़ों से कोई मोह नहीं। यह सब उनका ही है बस डर है कि कहीं मेरे बाद कोई झगड़ा न हो जाए।"

मैंने वादा किया। बड़े बेटे को फोन लगाया। पर कोई जवाब नहीं आया। कई बार लगाया। एक बार भी नहीं उठाया।

चाची ने मेरा चेहरा देखा। सब समझ गईं। बस इतना बोलीं "कोई बात नहीं बेटा। तुम यहाँ हो न। तुम्हीं संभाल लेना।" जब भी हो उनकी अमानत सौंप देना

6. वह रात

उस रात चाची ने मुझे बहुत कुछ बताया। अपनी ज़िन्दगी के वो पल, जो कभी किसी से नहीं कहे थे।

"बेटा, मैं 19 साल की थी जब शादी हो गई। तीन बच्चों की माँ बनना आसान नहीं था। पहले तो वे मुझे मानते नहीं थे। धीरे-धीरे... प्यार हो गया। मैंने उन्हें अपना मान लिया। पर शायद... शायद वे मुझे कभी माँ नहीं मान पाए।"

उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे।

"पर बेटा, मुझे कोई गिला नहीं। उनके पिता ने मुझे बहुत प्यार दिया। इज़्ज़त दी। कभी ऊँची आवाज़ में बात नहीं की। यह घर, यह दुकान, यह सब कुछ उन्होंने दिया। मैं उनकी शुक्रगुज़ार हूँ। बस... बस एक तमन्ना थी कि एक बार वे सब आते, मुझसे मिलते। पर... कोई बात नहीं।"

7. विदाई

कुछ दिनों बाद चाची चल बसीं।

उनके कोई नहीं आया। कोई बेटा नहीं, कोई बहू नहीं, कोई पोता-पोती नहीं। सिर्फ मैं था, और गाँव के कुछ लोग।

मेरे हाथों ही चाची का क्रियाकर्म लिखा गया। उनके अंतिम संस्कार की रस्में मुझे ही निभानी पड़ीं। उस वक्त सोच रहा था यही हैं वो बच्चे, जिनके लिए चाची ने अपनी जवानी लगा दी? यही हैं वो, जिनके लिए उन्होंने अपने बच्चे नहीं पैदा किए? यही हैं वो, जिनकी खातिर उन्होंने सारी ज़िन्दगी झोंक दी?

पर चाची ने कभी शिकायत नहीं की। कभी नहीं।

8. बारह साल बाद

चाची को गए 12 साल बीत गए।

उनका घर अब खंडहर हो गया था। दीवारों पर काई जम गई थी। दरवाज़े टूट चुके थे। आँगन में घास उग आई थी। पर मैं कभी-कभी जाता, वहाँ बैठता, चाची को याद करता। कभी-कभी सफ़ाई कर देता। ऐसा लगता था, जैसे चाची की आत्मा को शांति मिलती हो।

पर आज सुबह कुछ अलग हुआ।

मैं वहाँ गया तो देखा एक कार खड़ी है। एक आदमी और औरत घर के आस-पास घूम रहे हैं। पास गया तो पहचान गया। चाची का बड़ा बेटा था रमेश। और उसकी पत्नी।

मुझे देखते ही वह मेरे पैरों पर गिर पड़ा। रोने लगा।

"भैया... मुझे माफ कर दो। हमसे बहुत बड़ी गलती हो गई।"

9. माफी

मैं समझ नहीं पाया। इतने सालों बाद यह क्या हो रहा है ?

"क्या हुआ रमेश ? उठो पहले।"

वह उठा। उसकी पत्नी भी रो रही थी।

"भैया, हमें पता चला... सब पता चला। हमारा बेटा... हमारा अपना बेटा... उसने हमें छोड़ दिया। जिस तरह हमने मां को छोड़ा था, ठीक उसी तरह। वह अमेरिका में सेटल हो गया। न शादी पर बुलाया , न हमारी बीमारी में आया। बस फोन तक नहीं करता।"

"तब हमें समझ आया भैया। जो बीज हमने बोया था, वही पेड़ हमारे सामने खड़ा था। हमने मां के साथ जैसा किया हमारा बेटा हमारे साथ वैसा ही कर रहा है।" उस मां के साथ जिसने दूसरे के बच्चों के लिए अपनी सारी जिंदगी

कुर्बान कर दी उसने कभी भी हमें मां की कमी महसूस नहीं होने दी। उसके त्याग और प्रेम को हम समझ ही नहीं पाए।

रमेश फूट-फूटकर रोया।

"भैया, हमें मां से माफी माँगनी है। पर वो अब नहीं हैं। हम तुमसे माफी माँगते हैं। तुमने उनके अंतिम संस्कार किए। तुमने उनकी यादों को संभाला हम तो... हम तो भूल ही गए थे।

10. चाची की आत्मा

मैं उन्हें लेकर घर के अंदर गया। वही आँगन, वही दीवारें, वही बरामदा, जहाँ चाची बैठा करती थीं। रमेश ने वहाँ जाकर सिर झुकाया। उसकी पत्नी ने हाथ जोड़े।

"मां... हमें माफ कर दो। हम अंधे थे। हमने तुम्हारा प्यार नहीं समझा। तुम हमारी सच्ची माँ थीं, पर हम कभी तुम्हारे सच्चे बेटे नहीं बन पाए।"

उसने मुझसे पूछा "भैया, मां ने कभी हमारे बारे में कुछ कहा था ?"

मैंने उसे वह बात बताई, जो चाची ने उस रात कही थी

"बेटा, मुझे कोई गिला नहीं। उनके पिता ने मुझे बहुत प्यार दिया। यह घर, यह दुकान, यह सब कुछ उन्होंने दिया। मैं उनकी शुक्रगुज़ार हूँ। बस एक तमन्ना थी कि एक बार वे सब आते, मुझसे मिलते। मैंने तो बस बच्चों को निश्छल प्यार किया, मां बन के। वो मेरे बच्चे थे। मेरे अपने, पर मै तो मां ही हूं उनकी भले ही वो मेरे बच्चे न हो। पर... कोई बात नहीं।"

रमेश की आँखों से आँसू बहते रहे।

"कोई बात नहीं... वह बोलीं 'कोई बात नहीं'। हमने उनके साथ जो किया, उसके बाद भी उनके मुँह से कोई शिकायत नहीं।"

11. घर का कायाकल्प

रमेश ने फैसला किया वह इस घर को फिर से बसाएगा।

भैया, यह घर मेरे पिता का है। मां का है। मैं इसे खंडहर नहीं रहने दूँगा। मैं यहीं रहूँगा। इसी गाँव में। इसी घर में, मां की आत्मा को शांति मिलेगी।

मैंने उसकी पीठ थपथपाई।

रमेश, चाची की आत्मा को शांति तभी मिलेगी, जब तुम सच में बदलोगे और लगता है तुम बदल गए हो।

उसने मुझे गले लगा लिया।

12. आज

आज वह घर फिर से बस गया है। रमेश और उसकी पत्नी वहीं रहते हैं। उन्होंने घर की मरम्मत कराई। उसी आँगन में चाची की तस्वीर लगाई। रोज़ फूल चढ़ाते हैं।

मैं जब भी जाता हूँ, उस घर में जरूर जाता हूँ। चाची की तस्वीर के सामने बैठता हूँ। और मुझे लगता है, जैसे वह मुस्कुरा रही हैं। वैसे ही जैसे बचपन में मुस्कुराती थीं।

कभी-कभी मुझे लगता है, शायद यही ज़िन्दगी है। कर्मों का फल। चाची ने कभी किसी को कोसा नहीं। कभी शिकायत नहीं की। उन्होंने बस प्यार किया। और वही प्यार आज उनके घर को फिर से जीवित कर गया।

12. उपसंहार

चम्पा चाची सिखा गईं कि प्यार में शिकायत नहीं होती। प्यार में गिला नहीं होता। प्यार तो बस मिलता है, बिना किसी उम्मीद के। और वही प्यार कभी नहीं मरता।

आज जब भी उस घर के सामने से गुजरता हूँ, चाची की याद आती है। उनकी वह आवाज़

"आ जा बेटा, आ जा। भूखा है क्या ? मिठाई खाएगा ?"

और मैं मुस्कुराकर उठता हूँ। क्योंकि चाची मरकर भी ज़िन्दा हैं उनके प्यार में, उनकी यादों में, और अब उस घर में, जो फिर से बस गया है।

धन्यवाद चाची। आपने सिखाया कि इंसानियत ही सबसे बड़ा धर्म है। और प्यार ही एकमात्र सच्चाई है।

अतुल नैथानी

धनिया की पुकार – दारू से बिखरता परिवार (गढ़वाल की एक लोककथा)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। पहाड़ी लोककथाओं और परंपराओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ का वो गाँव

गढ़वाल के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों में एक छोटा-सा गाँव था। नाम किसी ने पूछा नहीं, पर वहाँ के देवदार के पेड़ बहुत पुराने थे। सीढ़ीदार खेत जैसे आसमान से उतरकर नीचे आए हों। और बीच में बहती थी एक पतली-सी गाड़ पहाड़ी नदी, जो हर पत्थर से टकराकर कोई पुरानी कहानी सुनाती थी।

गाँव सुंदर था। पर सुंदरता के अंदर एक घाव था।

शराब।

शाम होते ही गाँव के मर्द देसी शराब की बोतल लेकर बैठ जाते। घर लौटते तो लड़खड़ाते कदम, ऊँची-ऊँची बातें, और फिर झगड़े। खेतों में काम नहीं होता। घरों में अनाज नहीं रहता। बच्चे भूखे सोते। औरतें चुपचाप आँसू पी जातीं।

2. धनिया

उसी गाँव में धनिया रहती थी। नाम था तो धनिया, पर उसकी ज़िन्दगी में धन नहीं था। था तो बस एक पति रमेश जो कभी बहुत मेहनती किसान हुआ करता था। उसके हाथों में ताकत थी, आँखों में सपने थे। पर फिर शराब आई। और सब कुछ बदल गया।

खेत सूखने लगे। फसल नहीं हुई। घर का अनाज खत्म हो गया। रमेश अब वहाँ नहीं था, जहाँ वह हुआ करता था। उसकी जगह एक और शख्स था चिड़चिड़ा, गुस्सैल, और हमेशा शराब के नशे में धुत्त।

धनिया चुप रही। उसने सोचा, शायद यह समय है, बीत जाएगा। पर समय नहीं बीतता, आदतें बीतती हैं। और आदतें नहीं बदल रही थीं।

3. वो रात

वह रात धनिया कभी नहीं भूली। सर्दी बहुत थी। पहाड़ों पर पाला गिर रहा था। घर में अनाज का एक दाना नहीं था। रमेश शाम को आया, बोतल हाथ में थी। उसने खाना माँगा। धनिया ने कहा "घर में कुछ नहीं है।"

रमेश चिल्लाया। बहुत चिल्लाया। फिर बाहर चला गया।

उस रात धनिया का छोटा बेटा भूखा सो गया। चूल्हे में आग नहीं थी। बच्चे ने माँ से कहा "माँ, सपने में खाना खाऊँगा।"

धनिया उस रात नहीं रोई।

उसके भीतर कुछ टूटा। पर टूटने के बाद कुछ नया बना जैसे आग में तपा हुआ लोहा। वह अब औरत नहीं थी, वह ज्वालामुखी थी। चुप, पर भीतर से धधकता हुआ।

4. पहला दीप

अगली सुबह धनिया गाँव के मंदिर के आँगन में गई। हाथ में एक छोटा-सा दीपक था। उसने उसे जलाया और एक कोने में रख दिया।

लोग इकट्ठे हो गए। हैरान थे। सवालों की बौछार थी।

"धनिया, यह दीपक किसलिए जलाया ?"

धनिया ने शांत स्वर में कहा

"यह दीप उस घर के लिए है, जहाँ शराब ने रोटी छीन ली है। यह दीप उन बच्चों के लिए है, जो भूखे सो गए। यह दीप उन औरतों के लिए है, जिनके आँसू किसी ने नहीं देखे।"

लोग चुप रहे। किसी के पास जवाब नहीं था।

5. दीपों की झड़ी

धनिया ने रोज़ एक दीप जलाना शुरू किया। हर सुबह, सूरज निकलने से पहले, वह मंदिर के आँगन में होती। हाथ में दीपक, आँखों में ठाना।

पहले तो लोग हँसे। फिर देखते रहे। फिर सोचने लगे।

एक दिन गाँव की दूसरी औरत उसके साथ आ गई। उसके पति ने भी शराब पी थी। उसके बच्चे भी भूखे सोए थे।

फिर दूसरी आई। तीसरी आई। एक-एक करके सारी औरतें।

मंदिर का आँगन दीपों से भर गया। हर दीप एक कहानी थी। हर दीप एक दर्द था। हर दीप एक चीख थी चुप, पर मुखर।

6. बुज़ुर्गों का सवाल

एक दिन गाँव के बुज़ुर्ग इकट्ठे हुए। सबसे बुज़ुर्ग, जिनके बाल बर्फ की तरह सफेद थे, उठकर धनिया के पास आए।

"बेटी, इतने दीप क्यों जलते हैं रोज़ ? मंदिर का आँगन दीपों से पट गया है

धनिया खड़ी हुई। उसकी आँखों में आँसू थे, पर आवाज़ में फ़ौलाद थी।

"बाबूजी, ये दीप उन घरों के लिए हैं, जहाँ शराब ने चूल्हे बुझा दिए हैं। ये दीप उन बच्चों के लिए हैं, जो रात को भूखे सोते हैं। ये दीप उन औरतों के लिए हैं, जिनकी चीखें कभी सुनी नहीं गईं।"

बुज़ुर्ग चुप रहे।

धनिया ने आगे कहा "जब तक हमारे घरों से शराब नहीं जाएगी, ये दीप जलते रहेंगे। और अगर ये दीप बुझ गए, तो समझना हमारी उम्मीदें बुझ गईं

उस दिन पहली बार गाँव के पुरुषों ने अपनी औरतों की तरफ देखा। उनकी आँखों में सवाल था। उनके सवाल में शर्म थी।

7. पंचायत

उस रात गाँव में पंचायत बुलाई गई।

सारे पुरुष बैठे। औरतें बाहर खड़ी थीं चुप, पर मौजूद।

बुज़ुर्गों ने कहा "हमने सुना। हमने देखा। अब फैसला हमें करना है।"

बहस हुई। बहुत बहस हुई। कुछ लोग शराब के पक्ष में थे। कुछ विरोध में

तब धनिया अंदर आई। सबने देखा। वह चुपचाप बीच में खड़ी हो गई।

"मैं कुछ नहीं कहूँगी," उसने कहा, "बस एक बात पूछूँगी।"

"पूछो," बुज़ुर्गों ने कहा।

"एक रात मेरा बेटा भूखा सोया। उसने कहा 'माँ, सपने में खाना खाऊँगा।' मैं उसे क्या जवाब दूँ ? उसे कैसे समझाऊँ कि उसके पिता की शराब उसकी रोटी खा गई ?"

पंचायत में सन्नाटा छा गया।

फिर एक-एक करके औरतें अंदर आईं। हर एक के पास एक कहानी थी। हर एक के पास एक दर्द था।

उस रात फैसला हुआ

गाँव में शराब बनाना और पीना बंद होगा।

8. बदलाव

धीरे-धीरे गाँव बदलने लगा।

पहले तो मुश्किल हुई। आदतें एक दिन में नहीं जातीं। पर औरतें डटी रहीं वे हर शाम मंदिर में इकट्ठा होतीं। दीप जलातीं। गीत गातीं। उन गीतों में शराब के खिलाफ़ बातें होतीं।

पुरुष देखते। पहले तो हँसते। फिर चुप रहते। फिर शर्मिंदा होते। फिर बदलने लगे।

रमेश ने एक दिन धनिया से कहा "मुझे माफ कर दे।"

धनिया चुप रही। फिर बोली "माफी मुझसे नहीं, अपने खेतों से माँग। अपने बेटे से माँग।"

रमेश ने कुदाल उठाई। खेतों में चला गया। उस दिन के बाद उसने फिर कभी शराब नहीं पी।

9. हरियाली

साल बीते।

अब वह गाँव पहचान में नहीं आता था। खेत हरे-भरे थे। फसलें लहलहा रही थीं। घरों में हँसी थी। बच्चे भूखे नहीं सोते थे।

मंदिर का आँगन अब भी दीपों से जगमगाता था। पर अब वे दीप दर्द के नहीं, जश्न के थे।

लोग कहते हैं" यह धनिया का चमत्कार है।"

पर धनिया कहती" यह चमत्कार नहीं है। यह हम सबकी मेहनत है। औरतों ने ठान लिया तो पहाड़ भी हिल सकता है।"

10. आज

आज भी उस गाँव के मंदिर में एक दीप जलता है।

हर शाम। हर रात। कभी नहीं बुझता।

लोग कहते हैं "वह धनिया का दीप है।"

पर धनिया अब इस दुनिया में नहीं है। वह कई साल पहले चली गई। पर उसका दीप आज भी जलता है।

जब कभी कोई औरत परेशान होती है, वह मंदिर जाती है। वह दीप देखती है। उसे लगता है, जैसे धनिया कह रही हो

"डरो मत। जलाओ एक दीप। रोशनी फैलेगी। अँधेरा भागेगा।"

11. उपसंहार

शराब सिर्फ एक आदत नहीं है। वह एक आग है जो पहले शरीर को जलाती है, फिर परिवार को, फिर पूरे समाज को।

पर जब एक स्त्री जलाया हुआ दीप अँधेरे में चमकता है, तो वह अकेला नहीं होता। दूसरे दीप उससे जुड़ते जाते हैं। और एक दिन पूरा गाँव रोशन हो जाता है।

धनिया ने यही सिखाया

एक दीप से दूसरा दीप जलता है।

एक हिम्मत से दूसरी हिम्मत बनती है।

और जब हिम्मत जुड़ती हैं, तो पहाड़ भी सर झुकाते हैं।

अतुल नैथानी

नौड़ी का जंगल – एक प्यार भरी भूत कथा
(गढ़वाल की एक अमर प्रेम कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। पहाड़ी लोककथाओं और परंपराओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. वो जंगल, वो यादें

दुगड्डा से ऊपर पहाड़ों की तरफ एक घना जंगल है नौड़ी का जंगल।

देवदार के इतने ऊँचे पेड़ कि उनकी चोटियाँ बादलों को छूती हैं। चट्टानों पर सदियों पुरानी काई जमी है, हरी-हरी, मखमल की तरह। और हर समय पक्षियों की आवाज़ें कोयल की कूक, कठफोड़वे की टक-टक, और दूर कहीं बहती किसी पहाड़ी गाड़ की कल-कल।

दिन में यह जंगल बहुत सुंदर है। सूरज की किरणें पेड़ों के बीच से छनकर आती हैं, ज़मीन पर जाली बुनती हैं। पर जैसे ही शाम ढलती है, वैसे ही इस जंगल में एक गहरा सन्नाटा उतर आता है। पक्षी चुप हो जाते हैं। हवा थम जाती है। और पेड़ों की परछाइयाँ लंबी होने लगती हैं।

पुराने लोग कहते हैं इस जंगल में एक प्यार करने वाली भूतनी रहती है।

पर वह किसी को डराती नहीं। वह तो बस... इंतज़ार करती है।

2. गंगा और भीम की कहानी

बहुत साल पहले की बात है। उसी गाँव में गंगा नाम की एक लड़की रहती थी।

गंगा... नाम जैसा स्वभाव था उसका। सरल, शांत, और बहने वाली ठीक उस नदी की तरह, जो उसके गाँव के पास बहती थी। वह हँसमुख थी, बहुत हंसमुख। उसकी हँसी में पहाड़ी झरने की मिठास थी। और हाँ, वह बहुत सुंदर थी इतनी सुंदर कि लोग उसे देखते ही रह जाते।

उसी गाँव में भीम नाम का एक युवक था। मेहनती, सच्चा, और गंगा से बे इंतहा प्यार करने वाला।

दोनों बचपन के साथी थे। साथ खेले, साथ बड़े हुए, साथ में पहाड़ों पर घूमे और धीरे-धीरे वह बचपन का साथ प्यार में बदल गया। पर वे चुप थे। किसी को कुछ नहीं बताते थे। बस आँखों ही आँखों में बातें कर लेते थे।

गंगा जब भी घर से निकलती, उसकी नज़र सबसे पहले भीम को ढूँढ़ती। और भीम जब भी खेतों में काम करता, उसके कान गंगा की पायल की आवाज़ के लिए तरसते रहते।

वो प्यार ऐसा था जैसे पहाड़ की दो चोटियाँ अलग, पर एक-दूसरे को देखती हुई।

3. जात-पात की दीवार

पर उस समय गाँव में जात-पात और मान-मर्यादा की दीवारें बहुत ऊँची थीं।

गंगा एक जाति की थी, भीम दूसरी। उनका प्यार गाँव वालों को मंज़ूर नहीं था।

जब यह बात फैली, तो गाँव में बवाल मच गया। पंचायत बुलाई गई। गंगा के पिता ने उसे घर में कैद कर दिया। भीम के घर वालों ने उसे समझाया "भूल जा उसे। यह प्यार नहीं हो सकता।"

पर भीम ने कहा "प्यार को जाति नहीं देखनी बाबूजी।"

एक दिन गाँव के ठेकेदारों ने फैसला सुनाया भीम को गाँव छोड़ना होगा। दूर शहर भेज दिया जाएगा। जहाँ वह गंगा को भूल जाए।

भीम गया। जाते-जाते उसने गंगा के घर की तरफ देखा। गंगा खिड़की में खड़ी थी। दूर से उसने देखा भीम की आँखों में आँसू थे। और उसके हाथ ने कहा "लौटकर आऊँगा।"

पर वह कभी नहीं लौटा।

उसके माँ पिताजी उसका इन्तजार करते दुनिया को अलविदा कर गए पर भीम का कही पता नहीं चला। उसके भाइयों ने मर गया कह कर उसका क्रिया कर्म कर दिया

4. गंगा का इंतज़ार

गंगा रोज़ शाम को नौड़ी के जंगल के किनारे आकर बैठती।

जहाँ से भीम गया था, उस रास्ते को देखती। घंटों देखती रहती। कभी उसे लगता, कोई आ रहा है। दौड़कर जाती। पर वहाँ सिर्फ हवा होती।

दिन बीते। महीने बीते। साल बीते।

गंगा अब हँसती नहीं थी। उसकी हँसी कहीं खो गई थी। उसकी आँखों में सिर्फ इंतज़ार था एक ऐसे इंतज़ार का सूखा समंदर।

उसके बालों में सफेदी आने लगी। चेहरे पर झुर्रियाँ। पर वह रोज़ जाती। रोज़ बैठती। रोज़ देखती।

गाँव वाले कहते "पागल हो गई है।"

पर गंगा को पता था पागल वे हैं, जो प्यार नहीं कर सकते।

5. वह रात

वह शाम अलग थी।

आसमान में काले-काले बादल छाए हुए थे। पहाड़ों पर तेज़ बारिश आई। हवा इतनी तेज़ कि पेड़ झुक गए। बिजली कड़की, ऐसा लगा जैसे आसमान फट पड़ा हो।

गंगा उस दिन भी जंगल के किनारे बैठी थी। उसने सोचा शायद आज भीम आएगा। तूफान में ही सच्चा प्रेमी लौटता है।

पर भीम नहीं आया।

बारिश में भीगती गंगा वहीं बैठी रही। ठंडी हवा चल रही थी। उसके हाथ-पाँव सुन्न हो गए। फिर भी वह उठी नहीं।

आँखें उस रास्ते पर टिकी थीं, जहाँ से भीम गया था।

सुबह जब गाँव वाले पहुँचे, गंगा वहीं पड़ी थी। उसके चेहरे पर अजीब-सी शांति थी। जैसे कोई अपने घर पहुँच गया हो। आँखें खुली थीं उसी रास्ते की तरफ।

कहते हैं, उस रात गंगा की साँसें थम गईं। पर उसका प्यार... उसका प्यार नहीं मरा।

6. प्यार की आत्मा

गंगा के बाद से नौड़ी का जंगल बदल गया।

लोग कहते हैं अब वहाँ एक लड़की दिखाई देती है। शाम ढलते ही। सफेद कपड़ों में। लंबे बाल। और आँखों में वही इंतज़ार।

वह पेड़ों के बीच धीरे-धीरे चलती है। कभी किसी पेड़ के तने को छूती है, कभी आसमान की तरफ देखती है। जैसे किसी की राह देख रही हो।

पर अजीब बात यह है वह किसी को डराती नहीं।

गाँव के बुज़ुर्ग बताते हैं "बेटा, वह गंगा है। अब वह भूतनी नहीं है। वह तो प्रेम की रखवाली करने वाली आत्मा बन गई है।"

7. यात्रियों की बातें

कई यात्रियों ने अनुभव किया है।

एक बार एक आदमी रात में उस जंगल से गुज़रा। वह बहुत डरा हुआ था। उसने सुना था यहाँ भूत है।

पर जैसे ही उसने जंगल में कदम रखा, उसे एक हल्की-सी खुशबू आई ऐसी खुशबू, जैसे किसी ने अभी-अभी फूल तोड़े हों। फिर हवा का एक झोंका आया, और उसके सामने का रास्ता साफ हो गया। जैसे कोई कह रहा हो "डरो मत, मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

एक और यात्री ने बताया उसे लगा जैसे कोई उसके बालों में हाथ फेर रहा हो। ठंडे हाथ, पर बहुत प्यार से। उसने पीछे मुड़कर देखा कोई नहीं था। पर उसकी आँखों से अचानक आँसू बहने लगे। बिना किसी कारण के। जैसे कोई उसका अपना रो रहा हो।

8. प्रेमियों का आशीर्वाद

गाँव वाले कहते हैं अगर कोई प्रेमी जोड़ा सच्चे मन से नौड़ी के जंगल से गुज़रे, एक-दूसरे का हाथ थामे, तो गंगा की आत्मा उन्हें आशीर्वाद देती है

एक बार एक जोड़ा आया। दोनों बहुत प्यार करते थे, पर घर वाले मान नहीं रहे थे। वे आखिरी बार मिलने आए थे फिर भागकर शहर जाने का प्लान था

वे जंगल में बैठे। रो रहे थे।

तभी हवा चली। एक ठंडी, मीठी हवा। उन्हें लगा, जैसे कोई उनके सिर पर हाथ रख रहा हो। दोनों ने एक-दूसरे की तरफ देखा। उनके दिलों में एक अजीब-सी शांति आ गई।

उन्होंने तय किया भागेंगे नहीं। लड़ेंगे। प्यार के लिए लड़ेंगे।

आज वे शादीशुदा हैं। खुश हैं। बच्चे हैं। और हर साल वे नौड़ी के जंगल जाते हैं। गंगा को धन्यवाद देने।

9. मेरी मुलाकात

मैं खुद एक बार उस जंगल से गुज़रा था। बात है कई साल पुरानी। दुगड्डा से ऊपर किसी काम से जा रहा था। शाम हो गई। रुकना नहीं चाहता था। लोगों ने कहा "मत जा रात में, नौड़ी का जंगल पड़ेगा।"

पर मुझे जाना था।

जंगल में घुसा तो अंधेरा घना था। बस चाँदनी थोड़ी-बहुत पेड़ों के बीच से छन रही थी। मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था।

तभी मुझे एक आवाज़ सुनाई दी। बहुत हल्की। जैसे कोई गुनगुना रहा हो।

मैं रुक गया। कान लगाए। कोई पहाड़ी गीत था। वही पुराना गीत, जो मेरी दादी गुनगुनाया करती थीं

"ऐ मेरा पहाड़ी बाबुल, कब आएगा मेरा साजन..."

आवाज़ के पीछे गया। देखा एक पेड़ के नीचे कोई बैठा था। सफेद कपड़ों में। लंबे बाल। चाँदनी में चेहरा साफ नहीं दिख रहा था।

"कौन हो तुम ?" मैंने पूछा।

वह उठी। मेरी तरफ देखा। उसकी आँखों में बहुत प्यार था, बहुत दर्द भी। फिर वह मुस्कुराई। बहुत हल्के से।

"डरो मत," उसने कहा, "मैं किसी को नहीं डराती। मैं तो बस इंतज़ार करती हूँ।"

"किसका ?"

उसने दूर उस रास्ते की तरफ देखा, जो पहाड़ों में खो जाता है।

"उसका... जो कभी लौटकर नहीं आया।"

फिर वह धीरे-धीरे पारदर्शी होने लगी। हवा में घुलने लगी। पर जाते-जाते उसने एक बात कही

"प्रेम को कोई नहीं रोक सकता। न जाति, न मर्यादा, न मौत। प्रेम तो अमर है।"

10. गंगा का संदेश

आज भी नौड़ी का जंगल खड़ा है।

देवदार के पेड़ आज भी हरे हैं। चट्टानों पर काई आज भी है। पक्षी आज भी गाते हैं। पर अब उस जंगल में एक और चीज़ है एक अधूरे प्रेम की शांत याद।

लोग अब उस जंगल से नहीं डरते। प्रेमी जोड़े वहाँ जाते हैं। हाथ में हाथ डालकर घूमते हैं। और कहते हैं उन्हें एक ठंडी हवा का झोंका जरूर आता है। एक हल्की-सी खुशबू। एक मीठी-सी आवाज़।

गाँव के बुज़ुर्ग मुस्कुराकर कहते हैं

"वह गंगा है। अब वह डराने वाली भूतनी नहीं, प्रेम की रखवाली करने वाली आत्मा बन गई है। वह देखती है कौन सच्चा प्रेम करता है। और उन्हें आशीर्वाद देती है कि उनका प्रेम अधूरा न रह जाए।"

11. आज भी चलता है इंतज़ार

आज भी, जब कभी शाम ढलती है, नौड़ी के जंगल में एक लड़की दिखाई देती है।

वह पेड़ों के बीच धीरे-धीरे चलती है। कभी रुकती है, कभी आगे बढ़ती है उसकी आँखें हमेशा उस रास्ते पर टिकी रहती हैं, जहाँ से उसका प्रेमी गया था।

कभी-कभी वह गीत गुनगुनाती है

"ऐ मेरा पहाड़ी बाबुल, कब आएगा मेरा साजन..."

और उस गीत में इतना दर्द होता है, इतना प्यार होता है, कि सुनने वाला ठिठक जाता है।

12. उपसंहार

नौड़ी का जंगल आज भी वैसा ही है। देवदार के पेड़ आज भी ऊँचे हैं। चट्टानों पर काई आज भी हरी है। और हवा में आज भी एक नाम घुला हुआ है गंगा।

वह आज भी इंतज़ार कर रही है। उस भीम का, जो कभी लौटकर नहीं आया पर शायद उसे पता है कि प्रेम में इंतज़ार ही सबसे बड़ा प्रमाण है।

और शायद इसीलिए आज भी नौड़ी का जंगल डर की जगह नहीं, एक अधूरे प्रेम की शांत याद बनकर खड़ा है।

13. संदेश

यदि कभी तुम नौड़ी के जंगल से गुज़रो, तो डरना मत।

रुकना एक पल। आँखें बंद करना। सुनना उस हवा को। महसूस करना उस खुशबू को।

और अगर किसी को दिखे एक लड़की, सफेद कपड़ों में, पेड़ों के बीच तो मुस्कुरा देना। वह गंगा है। और वह सिर्फ प्यार बाँट रही है।

वही प्यार, जो उसे मिला नहीं, पर जो वह दूसरों को देना चाहती है।

अतुल नैथानी

रतनी का दीप – एक पहाड़ी लोककथा
(गढ़वाल के पहाड़ों से एक प्रेरक कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। पहाड़ी लोककथाओं और परंपराओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ का वो गाँव

गढ़वाल के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों में एक छोटा-सा गाँव था।

नाम था उसका फल्दियाल गाँव। एक खूबसूरत ढलान पर बसा, चारों तरफ देवदार के घने जंगल। सुबह होते ही सूरज की पहली किरण इन्हीं देवदारों की चोटियों को छूती और धीरे-धीरे नीचे उतरती, जैसे कोई माँ अपने बच्चे को प्यार से जगा रही हो।

गाँव में करीब पचास घर थे। पत्थर और मिट्टी से बने, छतों पर काली पठाल हर घर में एक आँगन, हर आँगन में तुलसी का पौधा, और हर दरवाज़े पर पुरानी सोच।

गाँव में एक पुरानी मान्यता थी लड़कियों को ज्यादा पढ़ाना नहीं चाहिए। लोग कहते थे, "बेटियाँ पढ़-लिखकर घर से दूर चली जाती हैं। परिवार की इज़्ज़त कम हो जाती है।"

इसलिए गाँव की बेटियाँ पाँचवीं-छठी से आगे स्कूल नहीं जा पाती थीं। उनकी दुनिया चूल्हे-चौके तक सीमित थी। उनके सपने दबे रह जाते थे, ठीक उस मिट्टी की तरह, जो पत्थरों के नीचे दबी होती है।

2. रतनी

उसी गाँव में रतनी नाम की एक लड़की रहती थी।

रतनी नाम जैसा रूप था उसका। गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, और उन आँखों में पहाड़ जितने बड़े सपने। वह हमेशा कुछ न कुछ सोचती रहती। जब दूसरी लड़कियाँ खेलतीं, वह किताबों में खोई रहती।

उसके पिता का नाम था दीवान सिंह। गरीब किसान थे। खेत में दिन-रात मेहनत करते, पर गुज़ारा मुश्किल से होता। माँ का नाम था चंदा देवी एक साधारण पहाड़ी महिला, जो अपनी बेटी के सपनों को समझती थी, पर सामने कुछ नहीं कह सकती थी।

रतनी स्कूल जाती थी गाँव से दो किलोमीटर नीचे, प्राइमरी स्कूल। आठवीं तक। उसके बाद का स्कूल शहर में था, दस किलोमीटर दूर। कोई लड़की वहाँ नहीं जाती थी।

पर रतनी के मन में कुछ और ही था।

3. वो बात

एक दिन शाम को, जब पिता खेत से लौटे, रतनी ने उनके पैर छुए। फिर हिचकिचाते हुए बोली

"बाबा, मैं आगे पढ़ना चाहती हूँ। नों में। शहर वाले स्कूल में।"

दीवान सिंह ने गहरी साँस ली। वह जानते थे कि यह बात होगी। डर भी लगता था।

"बेटी," उन्होंने धीरे से कहा, "तू जानती है, यहाँ लड़कियाँ इतना नहीं पढ़तीं। लोग क्या कहेंगे ? और शहर इतना दूर... अकेले कैसे जाएगी ?"

रतनी की आँखों में आँसू आ गए। पर वह चुप रही। पिता को दुखी नहीं देख सकती थी।

माँ ने उसे बाद में गले लगाया। फुसफुसाई "बेटा, अपने मन की आग मत बुझने देना। वक़्त आने पर सब ठीक होगा।"

रतनी ने माँ की बात दिल में रख ली।

4. दीपक की रोशनी में

उसके बाद से रतनी ने एक नया रास्ता खोज लिया।

हर शाम जब गाँव के लड़के स्कूल से लौटते, वह उनसे किताबें माँग लाती कोई हँसता तो कोई दे देता। चुपके से, छिपाकर।

रात को जब गाँव सो जाता, रतनी अपने कमरे में एक छोटा-सा दीपक जलाती। उसकी हल्की रोशनी में वह अक्षरों से दोस्ती करती। पढ़ती, समझती, याद करती।

कितनी ही रातें वह जागकर पढ़ती। सर्दी हो या गर्मी, बारिश हो या तूफान वह दीपक जलता रहता। और उसके साथ रतनी की आँखों का उजाला।

कभी-कभी माँ चुपके से उठती, दूध का गिलास लेकर आती। बेटी के सिर पर हाथ फेरती। फिर बिना कुछ कहे चली जाती। पर उसके हाथ का स्पर्श रतनी को बहुत कुछ कह जाता।

5. गाँव वालों की बातें

गाँव वालों को पता चल गया।

"देखो, दीवान सिंह की बेटी रात को दीपक जलाकर पढ़ती है। इतना पढ़कर क्या करेगी ? आखिर में तो चूल्हा ही संभालना है।"

"बड़े सपने हैं उसे। पता नहीं कहाँ ले जाएँगे ये सपने।"

"लड़कियों का यही हाल है जितना पढ़ो, उतनी बेचैनी बढ़ो।"

रतनी सुनती, पर चुप रहती। उसके भीतर की आग इन हवाओं से और तेज़ होती। वह जानती थी जलने वाला दीपक ही अँधेरा मिटाता है।

6. वह रात

वह रात कभी नहीं भूली गाँव वालों ने।

भादों का महीना था। दिन भर तेज़ बारिश होती रही। शाम होते-होते बारिश और तेज़ हो गई। गड़गड़ाहट से पहाड़ काँप रहे थे। बिजली कड़कती, तो लगता जैसे आसमान फट पड़ा हो।

रात को अचानक एक भयानक आवाज़ आई। पहाड़ से पत्थर और मिट्टी गिरने लगे। भूस्खलन!

गाँव के कई घरों की दीवारें गिर गईं। कई लोग मलबे में दब गए। चीख-पुकार मच गई। अँधेरे में कुछ दिख नहीं रहा था। बारिश में भीगते लोग इधर-उधर भाग रहे थे।

कोई डॉक्टर नहीं था। कोई दवा नहीं थी। गाँव का रास्ता टूट चुका था शहर से संपर्क खत्म।

लोग घायल पड़े थे। बच्चे रो रहे थे। बूढ़े कराह रहे थे। मौत का सन्नाटा पसर रहा था।

7. रतनी का साहस

तभी रतनी सामने आई।

हाथ में वही छोटा-सा दीपक था, जिसकी रोशनी में वह रात-रात भर पढ़ती थी। उस दीपक की टिमटिमाती रोशनी में उसका चेहरा देवी जैसा लग रहा था।

वह मलबे के पास गई। घायलों को देखा। उसके हाथ काँप रहे थे, पर आँखों में दृढ़ता थी।

"कोई घबराए नहीं। मैं हूँ न।"

उसने अपनी किताबों से सीखी प्राथमिक चिकित्सा याद की। कपड़े फाड़कर पट्टियाँ बाँधी। घाव साफ किए। घायलों को संभाला। किसी को पानी पिलाया तो किसी को ढाँढस बँधाया।

एक बच्ची बुरी तरह घायल थी। उसके सिर से खून बह रहा था। रतनी ने उसे गोद में लिया। उसके सिर पर पट्टी बाँधी। धीरे-धीरे बच्ची को होश आया।

"दीदी..." उसने धीरे से कहा।

रतनी की आँखों से आँसू बह निकले। पर वह रुकी नहीं।

8. पूरी रात जागना

वह पूरी रात जागती रही।

एक के बाद एक घायलों की मदद करती रही। कभी यहाँ, कभी वहाँ। उसने दीपक कभी बुझने नहीं दिया। कितनी बार हवा से बुझने लगता, वह उसे बचा लेती।

गाँव वाले देखते रहे। वही रतनी, जिस पर हँसते थे, जिसके सपनों का मज़ाक उड़ाते थे आज उनकी जान बचा रही थी। उसके हाथों में चमत्कार था। उसकी आँखों में करुणा थी। उसके दिल में इंसानियत थी।

सुबह जब सूरज निकला, शहर से राहत टीम आ गई। डॉक्टर आए। उन्होंने देखा कई लोगों का इलाज पहले ही हो चुका था। कोई हैरान था, कोई अविश्वास में।

"यह किसने किया ?" डॉक्टर ने पूछा।

सबने एक साथ कहा "रतनी ने। हमारी रतनी ने।"

9. बुज़ुर्गों की आँखें नम

गाँव के सबसे बुज़ुर्ग व्यक्ति दादा बच्चू सिंह रतनी के पास आए। उनकी आँखों में आँसू थे। उन्होंने रतनी के सिर पर हाथ रखा।

"बेटी, हम सब अंधे थे। हमने तुझे पढ़ने से रोका। हमने तेरे सपनों का मज़ाक उड़ाया। पर आज तूने हमारे गाँव को बचा लिया। आज तूने हमारी आँखें खोल दीं।"

रतनी ने उनके पैर छुए। दादा, यह मेरा फ़र्ज़ था। मैंने जो पढ़ा, वही किया

दीवान सिंह वहीं खड़े थे। उनकी आँखों में आँसू और गर्व दोनों थे। वह अपनी बेटी की तरफ देख रहे थे वही बेटी, जिसे उन्होंने पढ़ाने से मना किया था, आज पूरे गाँव की रक्षक बन गई थी।

वह रतनी के पास आए। उसे गले से लगा लिया। फिर बोले

"बेटी, आज तूने हमारे गाँव को बचा लिया। हमने तुझे पढ़ने से रोका... यह हमारी सबसे बड़ी भूल थी। हमें माफ कर दे।"

रतनी उनसे लिपट गई। फूट-फूटकर रोई। उस रोने में बरसों का दर्द था, बरसों की तपस्या थी, और सबसे बड़ी बात उसकी जीत थी।

10. पंचायत का फैसला

उसी दिन गाँव में पंचायत बुलाई गई। सारे लोग इकट्ठे हुए।

दादा बच्चू सिंह खड़े हुए। उन्होंने सबसे कहा

"आज से यह गाँव बदलेगा। आज से यहाँ की हर बेटी पढ़ेगी। जितना पढ़ना चाहे, उतना पढ़ेगी। हम किसी के सपने नहीं मारेंगे। रतनी ने हमें सिखाया कि बेटियाँ बोझ नहीं, उजाला होती हैं।"

सबने एक स्वर में हाँ भरी।

उस दिन के बाद गाँव के हर घर से लड़कियाँ स्कूल जाने लगीं। पहले तो कुछ लोग हिचकिचाए, पर फिर सबने देखा बेटियाँ पढ़ रही हैं, सीख रही हैं, और गाँव बदल रहा है।

11. रतनी की वापसी

साल बीत गए।

रतनी ने पढ़ाई जारी रखी। गाँव से शहर गई, फिर मेडिकल कॉलेज में दाखिला लिया। कितनी ही मुश्किलें आईं, पर वह डटी रही। उसके मन में वह दीपक हमेशा जलता रहा वही दीपक, जिसकी रोशनी में उसने अक्षर पहचाने थे।

दस साल बाद रतनी डॉक्टर बनकर अपने गाँव लौट आई।

गाँव वालों ने जुलूस निकाला। फूल बरसाए। बैंड-बाजे बजाए। वही गाँव, जहाँ कभी उसे पढ़ने से रोका गया था, आज उसके सम्मान में झूम रहा था।

रतनी ने गाँव में एक छोटा सा अस्पताल खोला। गरीबों का मुफ्त इलाज करती। दूर-दूर से लोग आते। वह हर किसी की मदद करती।

12. दीपक की रोशनी

आज भी उस गाँव में जब कोई लड़की स्कूल जाती है, तो बुज़ुर्ग मुस्कराकर कहते हैं।

देखो, यह रतनी के दीप की रोशनी है। जो अब पूरे पहाड़ में फैल रही है।

रतनी का वह छोटा सा दीपक आज भी उसके घर में रखा है। अब वह दीपक मिट्टी का नहीं, सोने का हो गया है उन यादों का, उस संघर्ष का, उस जीत का।

रतनी कहती है "वह दीपक मेरा गुरु था। उसने मुझे सिखाया कि अँधेरा कितना भी घना हो, एक छोटी-सी रोशनी भी उसे हरा सकती है।"

13. उपसंहार

रतनी आज भी उसी गाँव में रहती है। डॉक्टर है। पत्नी है माँ है दीदी है। और सबसे बढ़कर एक मिसाल है।

उस गाँव की हर लड़की आज पढ़ती है। कुछ डॉक्टर बनीं, कुछ इंजीनियर, कुछ शिक्षिका। पर हर एक के दिल में रतनी के लिए बेइंतहा इज़्ज़त है क्योंकि रतनी ने सिर्फ खुद को नहीं बदला उसने पूरे गाँव की सोच बदल दी एक दीपक से पूरे पहाड़ में उजाला कर दिया।

14. संदेश

पहाड़ की बेटियाँ बोझ नहीं, उजाला होती हैं। उन्हें पढ़ने का अवसर मिल जाए तो वे पूरे समाज को बदल सकती हैं। एक दीपक से हजार दीपक जलते हैं। और एक बेटी से पूरा गाँव रोशन होता है।

अतुल नैथानी

मुन्ना की मुसीबत – एक अनाथ का संघर्ष
(दुगड़ा के पहाड़ों से एक संघर्ष भरी लोककथा)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। दुगड़ा के आस-पास की पहाड़ी पृष्ठभूमि और लोक जीवन से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. दुगड़ा का वो छोटा सा गाँव

दुगड़ा से थोड़ा ऊपर, जहाँ सड़क पहाड़ी से सटकर निकलती है, वहाँ एक छोटा-सा गाँव था ल्वाणी गाँव। चारों तरफ बुरांश के जंगल, सीढ़ीदार खेत, और बीच में बहती एक पतली-सी गाड़ पहाड़ी नदी, जो हर पत्थर से टकराकर कोई पुरानी कहानी सुनाती थी।

गाँव में करीब साठ घर थे। पत्थर और मिट्टी से बने, छतों पर पत्थर की ।हर घर में एक आँगन, हर आँगन में तुलसी का पौधा, और हर दरवाज़े पर एक कहानी।

उसी गाँव के एक कोने में, एक टूटी-फूटी झोंपड़ी थी। उस झोंपड़ी में रहता था मुन्ना।

2. मुन्ना

मुन्ना... नाम तो मुन्ना था, पर उसे किसी ने मुन्ना कहकर बुलाया नहीं। लोग बस 'अनाथ' कहकर बुलाते थे। पर वह अनाथ था यह सच था।

उसके पिता जंगल में लकड़ी काटने गए थे, एक दिन तूफान में पेड़ गिर गया पिता वहीं चल बसे। माँ ने दो साल तक दुख सहा, फिर वह भी उनके पास चली गई। मुन्ना तब सात साल का था।

उसके बाद से वह अकेला था। कोई नहीं था उसका न बाप, न माँ, न भाई-बहन, न कोई अपना।

पर थी तो एक चीज़ उसकी दादी की दी हुई एक लोहे की कुल्हाड़ी। वही उसकी पूंजी थी। वही उसका सहारा।

3. भूख और अकेलापन

मुन्ना की ज़िन्दगी मुसीबतों से भरी थी।

सुबह उठता, तो पेट में भूख की आग। कोई देता तो खा लेता, नहीं तो जंगल से जड़ें-बूटियाँ तोड़कर खा लेता। कभी किसी के खेत में काम कर देता, बदले में दो रोटी मिल जातीं। कभी बदले में कुछ नहीं मिलता।

गाँव वाले उसे देखते तो हँसते "आ गया अनाथ। कुछ चाहिए क्या ?"

मुन्ना चुप रहता। कभी कुछ नहीं माँगता। उसकी आँखों में एक चमक थी, एक जिद थी। वह किसी के सामने हाथ नहीं फैलाना चाहता था।

रात को वह अपनी झोंपड़ी में लौटता। वहाँ कोई नहीं होता। बस दीवारों पर उसके पिता की पुरानी तस्वीर लगी थी फटी हुई, धुँधली। वह उसे देखता कभी-कभी बातें करता।

"बाबा, आज बहुत भूख लगी थी। पर मैंने किसी से नहीं माँगा। तुमने सिखाया था हाथ नहीं फैलाना।"

तस्वीर से कोई जवाब नहीं आता। बस हवा में एक सरसराहट होती, जैसे कोई कह रहा हो "बेटा, मैं देख रहा हूँ। तू बहादुर है।"

4. जुल्म

गाँव में एक था ध्यान सिंह। उसके पास जितनी ज़मीन थी, उतनी पूरे गाँव में किसी के पास नहीं। वह गरीबों पर बहुत जुल्म करता था।

एक दिन मुन्ना उसके खेत में काम कर रहा था। दिन भर धूप में मेहनत की। शाम को ध्यान सिंह ने पूछा "कितना पैसा दूँ ?"

मुन्ना ने कहा "बीस रुपए, साहब।"

ध्यान सिंह हँसा "बीस ? ले दस, बहुत है तेरे लिए।"

मुन्ना ने कहा " साहब, मैंने दिन भर काम किया है। बीस रुपए भी कम हैं, दस तो बहुत कम हैं।" ध्यान सिंह को गुस्सा आ गया। "बहुत बोलता है निकल यहाँ से, और हाँ, कल से काम पर मत आना।"

मुन्ना चुपचाप वहाँ से चला गया। उसके हाथ में कुछ नहीं था। न पैसा, न रोटी, न उम्मीद।

पर उस रात उसने ठान लिया वह गरीब नहीं रहेगा। वह किसी के सामने हाथ नहीं फैलाएगा। वह कुछ बनकर रहेगा।

5. स्कूल जाने की जिद

मुन्ना ने सोचा पढ़-लिखकर ही कुछ बन सकता है।

एक दिन वह गाँव के स्कूल गया। वहाँ मास्टर जी बैठे थे बुज़ुर्ग, बाल सफेद, आँखों में तेज।

"मास्टर जी, मुझे पढ़ना है।"

मास्टर जी ने देखा। चेहरे पर भूख के निशान, कपड़े फटे हुए, पैरों में जूते नहीं। पर आँखों में एक चमक।

"बेटा, पढ़ने के लिए फीस चाहिए, किताबें चाहिए, कपड़े चाहिए। तेरे पास क्या है ?"

मुन्ना चुप रहा। फिर बोला "मेरे पास कुछ नहीं मास्टर जी। पर मैं काम करूँगा। जो कहोगे, वह करूँगा। बस पढ़ने दीजिए।"

मास्टर जी की आँखें नम हो गईं। उन्होंने मुन्ना को गले लगा लिया।

बेटा, कल से स्कूल आ जा। मैं तुझे पढ़ाऊँगा। फीस की चिंता मत कर।

मुन्ना के आँखों से आँसू बह निकले। उसने मास्टर जी के पैर छुए। वह पहली बार किसी के सामने रोया था।

6. दोहरी ज़िन्दगी

मुन्ना अब सुबह स्कूल जाता, शाम को काम करता। कभी किसी के खेत में, कभी किसी की दुकान पर, कभी जंगल से लकड़ी तोड़कर लाता।

रात को अपनी झोंपड़ी में वह दीपक जलाकर पढ़ता। वही दीपक, जो उसकी दादी ने छोड़ा था। उसकी रोशनी में वह अक्षर पहचानता। कितनी ही रातें वह जागकर पढ़ता।

गाँव वाले हँसते "अनाथ भी पढ़ेगा ? क्या होगा पढ़कर ? आखिर में तो वही मज़दूरी करेगा।"

पर मुन्ना ने किसी की नहीं सुनी। वह जानता था मेहनत कभी बेकार नहीं जाती।

7. मास्टर जी का साथ

मास्टर जी ने मुन्ना को कभी अकेला नहीं छोड़ा। वे उसे अलग से पढ़ाते। किताबें देते। कभी खाना भी दे देते।

एक दिन मुन्ना ने पूछा "मास्टर जी, आप मेरी इतनी मदद क्यों करते हैं ? मैं तो अनाथ हूँ।"

मास्टर जी मुस्कुराए। "बेटा, तू अनाथ नहीं है। तेरे पास सबसे बड़ी चीज़ है इरादे। जिसके इरादे मज़बूत हों, वह कभी अनाथ नहीं होता।"

उस दिन मुन्ना ने ठान लिया वह मास्टर जी को निराश नहीं करेगा।

8. ध्यान सिंह से टक्कर

साल बीत गए। मुन्ना अब आठवीं में था। पढ़ाई में तेज था, पर गरीबी अभी भी साथ थी।

एक दिन ध्यान सिंह ने उसे बुलाया। "मुन्ना, तू पढ़ता है ? मास्टर बनना चाहता है ?"

मुन्ना ने कहा "हाँ साहब, डॉक्टर बनना चाहता हूँ।"

ध्यान सिंह ज़ोर से हँसा। "डॉक्टर ? तू ? अनाथ ? सुन, तेरे जैसे लोग मज़दूरी करने के लिए बने हैं। डॉक्टर बनना तो बड़े लोगों का काम है।"

मुन्ना को बहुत गुस्सा आया। पर वह चुप रहा। उसने ध्यान सिंह की बातों को अपने इरादों पर हावी नहीं होने दिया। वह वहाँ से चला गया, पर मन में एक बात और ठान ली ध्यान सिंह को गलत साबित करके रहेगा।

9. शहर की राह

दसवीं पास करने के बाद मुन्ना ने मास्टर जी से सलाह ली।

"मास्टर जी, आगे क्या करूँ ? गाँव में तो और पढ़ाई नहीं है।"

मास्टर जी ने कहा "बेटा, अब तुझे शहर जाना होगा। देहरादून। वहाँ अच्छे स्कूल हैं, कोचिंग हैं। मेहनत कर, डॉक्टर बन।"

"पर मास्टर जी, पैसे... ?"

पैसे की चिंता मत कर,मैं हूँ न। और तेरी मेहनत है। जा, किस्मत आज़मा

मुन्ना ने मास्टर जी के पैर छुए। वह देहरादून चला गया।

10. शहर की मुसीबतें

देहरादून में मुन्ना के लिए नई मुसीबतें थीं।

पहले तो कोई ठिकाना नहीं था। कई दिन वह रेलवे स्टेशन पर सोया। फिर एक छोटी-सी झोंपड़ी मिल गई। दिन में काम करता, रात को पढ़ाई करता

एक दिन बहुत तेज़ बारिश हुई। उसकी झोंपड़ी में पानी भर गया। उसकी किताबें भीग गईं। वह बैठकर रोया। बहुत रोया। पर फिर सोचा "मुन्ना, तू रोने से कुछ नहीं होगा। उठ, फिर से शुरू कर।"

उसने किताबें सुखाईं। फटे हुए पन्नों को जोड़ा। फिर से पढ़ने बैठ गया। इसी तरह से इण्टर पास के लिया

11. मदद का हाथ

एक दिन एक बुज़ुर्ग डॉक्टर ने मुन्ना को देखा। वह रोज़ सुबह एक ढाबे पर चाय पीता, और मुन्ना वहाँ बैठकर पढ़ता देखा।

"बेटा, क्या पढ़ता है ?" डॉक्टर ने पूछा।

"डॉक्टर बनना है साहब। मेडिकल की तैयारी कर रहा हूँ।"

डॉक्टर साहब को यकीन नहीं हुआ। उन्होंने मुन्ना से बातें कीं। उसकी मेहनत देखी। उसकी जिद देखी।

"बेटा, कल से मेरे पास आ जा। मैं तुझे पढ़ाऊँगा। फीस नहीं लूँगा। बस मेहनत कर।"

मुन्ना को लगा जैसे भगवान ने उसकी सुन ली।

12. सफलता

मुन्ना ने दिन-रात एक कर दिया। वह डॉक्टर साहब के पास जाता, सीखता, और रात को खुद पढ़ता। कई बार नींद उसकी आँखों से कोसों दूर भाग जाती। पर वह डटा रहा। मेहनत रंग लाई ओर मुन्ना को सरकारी मेडिकल कॉलेज में प्रवेश मिल गया जब उसका नाम नतीजों में आया, तो उसकी आँखों से आँसू बह निकले। वह सबसे पहले मास्टर जी के पास गया। उनके पैर छुए। फिर डॉक्टर साहब के पास गया। उन्हें गले लगा लिया।

पाँच साल बाद मुन्ना डॉक्टर बन गया।

उसके बाद वह गाँव लौटा उसी गाँव में, जहाँ उसे अनाथ कहा जाता था, जहाँ उसका मज़ाक उड़ाया जाता था।

13. वापसी

मुन्ना जब गाँव पहुँचा, तो पूरा गाँव उसे देखने आया।

वही मुन्ना, जो कभी भूखा सोता था, जिसे लोग अनाथ कहते थे, आज डॉक्टर बनकर लौटा था। सबकी आँखों में हैरानी थी, गर्व था।

ध्यान सिंह वहाँ खड़ा था। मुन्ना ने उसे देखा। पास गया।

"ध्यान सिंह साहब, याद है ? आपने कहा था तेरे जैसे लोग मज़दूरी करने के लिए बने हैं। आज मैं डॉक्टर हूँ।"

ध्यान सिंह ने सिर झुका लिया। "बेटा, मुझे माफ कर दे। मैं अंधा था।

मुन्ना ने कहा "मैं माफ करता हूँ ध्यान सिंह साहब। पर याद रखिए इंसान उसकी जाति से नहीं, उसकी मेहनत से पहचाना जाता है।"

14. मुन्ना का अस्पताल

मुन्ना ने गाँव में एक छोटा-सा अस्पताल खोला। गरीबों का मुफ्त इलाज करता। दूर-दूर से लोग आते।

उसने मास्टर जी को अस्पताल में एक कमरा दिया। उनके लिए अलग से। "मास्टर जी, आपने मुझे इंसान बनाया। आप इसी कमरे में रहिए। मैं आपकी सेवा करूँगा।"

मास्टर जी की आँखों से आँसू बह रहे थे। "बेटा, मैंने तुझमें सिर्फ एक बच्चा नहीं देखा था। मैंने तुझमें एक मिसाल देखी थी। और आज वह मिसाल सच हो गई।"

15. आज

आज मुन्ना का अस्पताल पूरे इलाके में मशहूर है। वह कोई बड़ा डॉक्टर नहीं बना, पर उसने सैकड़ों गरीबों की जान बचाई है।

उसकी झोंपड़ी अब वहाँ नहीं है। उसकी जगह एक पक्का घर बन गया है। पर उस घर के एक कोने में वह लोहे की कुल्हाड़ी रखी है उसके पिता की दी हुई।

और वह दीपक उसकी दादी का दीपक, जिसकी रोशनी में उसने पढ़ना सीखा था।

वह कहता है "यह कुल्हाड़ी मुझे याद दिलाती है कि मैं कहाँ से आया हूँ। और यह दीपक याद दिलाता है कि अँधेरा चाहे कितना भी घना हो, एक छोटी-सी रोशनी भी उसे हरा सकती है।"

16. उपसंहार

आज भी दुगड़ा के आस-पास के गाँवों में मुन्ना की कहानी गूँजती है। माँएँ अपने बच्चों को कहती हैं "देखो मुन्ना को। अनाथ था, पर हारा नहीं। तुम्हारे पास सब कुछ है, फिर भी हार मान लेते हो।"

बच्चे मुन्ना की तरह बनना चाहते हैं। उसके अस्पताल में आते हैं, उसे देखते हैं, सीखते हैं।

मुन्ना कहता है "मैंने सिर्फ एक चीज़ सीखी है मेहनत कभी बेकार नहीं जाती और इंसान की पहचान उसकी जाति से नहीं, उसकी मेहनत से होती है।"

17. संदेश

मुसीबतें उन्हीं को मिलती हैं, जिनमें उनसे लड़ने की ताकत होती है।

मुन्ना ने हार नहीं मानी, इसलिए वह मुन्ना नहीं, एक मिसाल बन गया।

पहाड़ों की गोद में जन्मा वह बच्चा आज पूरे इलाके का सहारा है। उसकी कहानी यही सिखाती है मेहनत करो, सच्चे रहो, एक दिन यही पहाड़ तुम्हारी जीत का गवाह बनेगा।

अतुल नैथानी

दुगड्डा का मौन साधु – सच की लौ
(खोह नदी के किनारे एक अमर कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। दुगड्डा की पहाड़ी पृष्ठभूमि और लोककथाओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. वो समय, वो दुगड्डा

बहुत साल पहले की बात है।

उस समय दुगड्डा आज जितना बड़ा बाज़ार नहीं था। छोटी-सी बस्ती थी कुछ दुकानें, एक पुराना मंदिर, और चारों तरफ फैले घने जंगल। देवदार के ऊँचे-ऊँचे पेड़, बुरांश के लाल फूल, और हर तरफ फैली हरियाली ।

उस समय सड़कें नहीं थीं। पगडंडियाँ थीं पत्थरों से भरी, पहाड़ियों से गुजरती हुई। यात्री पैदल चलते थे। कहीं से कोई आता, तो कहीं कोई जाता। सबके पास कहानियाँ थीं। और उन्हीं रास्तों से थोड़ा हटकर, खोह नदी के किनारे, एक छोटी-सी कुटिया थी। मिट्टी की दीवारें, फूस की छत, और बाहर एक छोटा-सा आँगन।

उस आँगन में एक पीपल का पेड़ था बहुत पुराना, बहुत घना। उसकी छाया में कुटिया सदा ठंडी रहती।

उस कुटिया में एक साधु रहता था।

2. मौन साधु

लोग उसे 'मौन साधु' कहते थे।

क्योंकि किसी ने उसे कभी बोलते नहीं सुना था। न किसी से कोई बात, न किसी से कोई शिकायत। वह बस चुप रहता।

सुबह होते ही वह उठता। खोह नदी में स्नान करता। फिर मिट्टी के घड़े में पानी भरता। जंगल से लकड़ियाँ लाता। अपने हाथों से चूल्हा जलाता। खुद खाना बनाता। खुद खाता।

शाम को, जब सूरज पहाड़ों के पीछे छिपने लगता, वह अपनी कुटिया के सामने एक छोटा-सा दीप जला देता। मिट्टी का दीपक, सरसों के तेल से भरा, और उसमें एक बाती बस।

वह दीपक जलता। देर तक जलता। कभी-कभी रात भर। और साधु बैठा रहता उस दीपक के पास, आँखें बंद किए, चुप। बस चुप।

3. यात्री और कुटिया

दुगड्डा से गुजरने वाले यात्री कभी-कभी उस कुटिया के पास रुकते।

कोई थका होता, कोई भूखा, कोई बीमार, कोई बस आराम करना चाहता। साधु कभी किसी को मना नहीं करता। वह चुपचाप पानी लाता, बैठने को जगह देता, अगर कुछ होता तो खाना भी दे देता।

पर कभी कुछ बोलता नहीं।

यात्री हैरान होते। "बाबा, आप बोलते क्यों नहीं ?" कोई पूछता।

साधु बस मुस्कुरा देता। हल्की-सी मुस्कान, जैसे उसके चेहरे पर हमेशा रहती थी। फिर अपने काम में लग जाता।

धीरे-धीरे यात्रियों ने एक अजीब बात देखी।

जो भी व्यक्ति क्रोध, लालच या झूठ के साथ उसके पास आता, उसे साधु की आँखों में देखना मुश्किल लगता। जैसे वे आँखें उसके भीतर झाँक रही हों। उसकी आत्मा को पढ़ रही हों। वह बेचैन हो जाता। जल्दी से वहाँ से चला जाता।

पर जो सच्चे मन से आता, जिसके मन में किसी का बुरा नहीं होता, उसे साधु की उपस्थिति में अजीब-सी शांति महसूस होती। जैसे कोई उसके सिर पर हाथ रख रहा हो। जैसे सारे दुख-दर्द दूर हो रहे हों।

4. व्यापारी की कहानी

एक बार दुगड्डा का एक बड़ा व्यापारी नाम था मदन लाल कहीं दूर गया हुआ था। वहाँ उसने अपने ही साथी को धोखा दिया। झूठ बोला। फर्जी तरीके से बहुत पैसा कमाया। गठरी में भरकर पैसे लिए, और वापस दुगड्डा लौट रहा था। रास्ते में शाम हो गई। वह थक गया था। उसने देखा खोह नदी के किनारे वह कुटिया है, और सामने दीपक जल रहा है।

वह रुक गया। सोचा थोड़ा आराम कर लूँ, फिर सुबह चलूँगा।

साधु ने उसे देखा। हमेशा की तरह मुस्कुराया। पानी दिया। बैठने को जगह दी।

मदन लाल बैठ गया। पानी पिया। फिर साधु की तरफ देखा।

साधु उसे देख रहा था। बस देख रहा था। उसकी आँखों में कोई पूछताछ नहीं थी, कोई सवाल नहीं था। बस एक गहराई थी ऐसी गहराई, जैसे कोई साफ पानी में उतरकर नीचे की सारी चीज़ें देख ले।

मदन लाल को लगा, जैसे वह आँखें उसके भीतर झाँक रही हैं। उसके सारे राज, उसके सारे झूठ, उसके सारे पाप सब देख रही हैं।

वह बेचैन हो गया। बार-बार करवट बदलता। नींद नहीं आ रही थी। उठा, बैठ गया। फिर लेटा। फिर उठा।

साधु वहीं बैठा था आँखें बंद किए, ध्यान में। दीपक जल रहा था। उसकी लौ हवा में थोड़ा थिरक रही थी।

मदन लाल को लगा, वह दीपक उसके अंदर जल रहा है। उसके पापों को रोशन कर रहा है। उसके झूठ को उजागर कर रहा है।

पूरी रात वह तड़पता रहा। सुबह होते ही उसने बोरियाँ उठाईं। पर जैसे ही आगे बढ़ा, उसके कदम रुक गए।

वह वापस लौटा। सीधा अपने साथी के पास गया। सामने खड़ा हो गया।

"भाई, मैंने तुझे धोखा दिया। यह पैसा तेरा है। मैंने झूठ बोला। मुझे माफ कर दे।"

साथी हैरान रह गया। "क्या हुआ तुझे ? तू ऐसा क्यों कह रहा है ?"

मदन लाल ने कहा "वह साधु... उसने कुछ नहीं कहा। पर उसकी आँखों ने मुझसे सब कह दिया। मैं झूठ के साथ नहीं रह सकता।"

खबर फैली। लोग हैरान थे। एक मौन साधु ने, बिना एक शब्द बोले, एक आदमी का दिल बदल दिया। कैसे ?

5. गाँव वालों की बातें

गाँव वाले उस कुटिया के पास जाने लगे। कोई अपनी परेशानी लेकर, कोई बस देखने, कोई शांति पाने।

एक दिन एक बुज़ुर्ग महिला आई। उसका बेटा बहुत बीमार था। वह रो रही थी। साधु ने उसकी तरफ देखा। फिर धीरे से उठा, कुटिया के अंदर गया, और एक जड़ी-बूटी लेकर आया। महिला को दी। मुस्कुराया।

महिला ने वह जड़ी-बूटी दी बेटा ठीक हो गया।

एक दिन एक गरीब किसान आया। उसकी फसल सूख गई थी। वह बहुत दुखी था। साधु ने उसे बैठने का इशारा किया। साथ बैठा रहा। कुछ नहीं कहा। बस साथ बैठा रहा।

किसान को लगा, जैसे उसका दुख बँट गया हो। वह शांत हो गया। वापस लौटा, और फिर से खेत जोतने लगा।

6. साधु की आँखें

एक दिन एक युवक आया। बहुत गुस्से में था। उसके साथ गाँव वालों ने अन्याय किया था। वह बदला लेना चाहता था।

साधु ने उसे देखा। फिर उठा, उसके सामने आया। उसकी आँखों में देखा। बस देखा। कुछ नहीं कहा।

युवक ने देखा उन आँखों में कोई निर्णय नहीं था, कोई आलोचना नहीं थी। बस एक करुणा थी, एक प्यार था।

वह रो पड़ा। सब कुछ बता दिया। साधु ने उसके सिर पर हाथ रखा। फिर मुस्कुराया।

युवक ने बदले का विचार छोड़ दिया। वह शांत हो गया।

7. एक सवाल

एक दिन एक पंडित आया। बहुत पढ़ा-लिखा। संस्कृत के विद्वान। उसने साधु से पूछा "बाबा, आप बोलते क्यों नहीं ? क्या उपदेश नहीं देना चाहते, लोगों को रास्ता नहीं दिखाना चाहते ?"

साधु ने उसकी तरफ देखा। फिर धीरे से उठा। उसने एक पत्थर उठाया और खोह नदी में फेंक दिया। पानी में लहरें उठीं। फिर धीरे-धीरे शांत हो गईं।

पंडित ने देखा। सोचा। फिर बोला "आप कहना चाहते हैं कि शब्द पत्थर की तरह हैं वे लहरें पैदा करते हैं, पर अंत में सब शांत हो जाता है ?"

साधु ने मुस्कुराकर सिर हिलाया।

पंडित फिर बोला "तो मौन ही सबसे बड़ा उपदेश है ?"

साधु ने फिर मुस्कुराकर सिर हिलाया।

पंडित ने उनके पैर छुए। वह समझ गया कभी-कभी शब्दों से ज्यादा मौन बोलता है।

8. एक रात की घटना

एक रात बहुत तूफान था। बारिश इतनी तेज़ कि लगता था पहाड़ बह जाएगा, बिजली कड़कती, तो आसमान फटता हुआ लगता।

सुबह जब लोग उठे, उन्होंने देखा खोह नदी उफान पर थी। पानी बहुत बढ़ गया था। कुटिया के पास तक आ गया था।

लोग दौड़े। सोचा कुटिया बह गई होगी। साधु को कुछ हो गया होगा।

पर जब पहुँचे, तो देखा कुटिया वहीं थी। और साधु वहीं बैठा था उसी जगह, उसी मुद्रा में। दीपक जल रहा था। उसके चेहरे पर वही मुस्कान।

लोग हैरान थे। इतना तूफान, इतनी बारिश, इतना पानी पर साधु पर कोई असर नहीं। उसकी शांति को कुछ हिला नहीं सका।

9. साधु का चले जाना

कुछ साल बाद एक दिन कुटिया खाली मिली। साधु नहीं था। उसका कोई सामान नहीं था। बस वही दीपक रखा था बुझा हुआ।

लोगों ने सोचा कहीं गए होंगे। कोई तीर्थ, कोई और पहाड़, कोई और जगह पर किसी ने उन्हें जाते नहीं देखा। वह बस... गायब हो गए।

कुटिया खाली पड़ी रही। फिर धीरे-धीरे वह टूटने लगी। दीवारें गिरने लगीं आँगन में घास उग आई। पीपल का पेड़ अब भी था, पर उसकी छाया में कोई नहीं बैठता था।

10. दीपक की वापसी

पर अजीब बात हुई।

कुछ दिनों बाद शाम को लोगों ने देखा उस खंडहर कुटिया के सामने एक दीप जल रहा था। कोई नहीं था वहाँ। बस दीप जल रहा था।

लोग हैरान हुए। सुबह गए तो दीप नहीं था। अगली शाम फिर जल रहा था

ऐसा रोज़ होने लगा। हर शाम, सूरज ढलते ही, वहाँ एक दीप जलने लगता कोई नहीं जानता कौन जलाता है। बस जलता है।

धीरे-धीरे लोग वहाँ आने लगे। पहले एक-दो, फिर बहुत से। शाम को वहाँ इकट्ठा होते। दीपक देखते। चुपचाप बैठते। कुछ देर बाद चले जाते।

किसी को डर नहीं लगता। उल्टे, एक अजीब-सी शांति मिलती।

11. बुज़ुर्गों की बात

आज भी दुगड्डा के बुज़ुर्ग कहते हैं

"बेटा, वह साधु कहीं गया नहीं है। वह तो पहाड़ की आत्मा बनकर बस गया है। अब वह लोगों के मन में सच की लौ जलाता है।"

जब भी कोई व्यक्ति झूठ बोलता है, या किसी को धोखा देता है, तो उसे एक अजीब-सी बेचैनी होती है जैसे कोई उसके भीतर देख रहा हो। और जो सच्चे होते हैं, उन्हें उस जगह पर जाकर अद्भुत शांति मिलती है।

कभी-कभी यात्री बताते हैं "जब हम खोह नदी के किनारे से गुजरते हैं, तो हमें एक हल्की-सी खुशबू आती है, और एक छोटा-सा दीप जलता दिखता है। पास जाते हैं तो कुछ नहीं होता। पर मन शांत हो जाता है।"

12. अतुल की यात्रा

अतुल उन दिनों दुगड्डा में रहता था। उसने बचपन में यह कहानी सुनी थी। उसे हमेशा लगता काश, वह साधु मिल जाते।

एक दिन वह खोह नदी के किनारे गया। वहाँ अब कुटिया नहीं थी। बस कुछ पत्थर, कुछ मिट्टी, और वही पीपल का पेड़ और भी घना, और भी पुराना।

वह पेड़ के नीचे बैठ गया। आँखें बंद कर लीं।

तभी उसे लगा, जैसे कोई उसके सिर पर हाथ रख रहा हो। गर्म हाथ, प्यार से भरे। उसने आँखें खोलीं कोई नहीं था।

पर उसके मन में एक अजीब-सी शांति थी। सारी चिंताएँ, सारे दुख, सारे सवाल सब गायब। बस एक सुकून था।

शाम को उसने देखा वहाँ एक दीप जल रहा था। उसने हाथ जोड़े। फिर वहाँ से चला गया।

आज वह हर साल उस जगह जाता है। बैठता है। दीपक देखता है। और उसे लगता है, जैसे साधु अब भी वहीं हैं बस दिखाई नहीं देते।

13. आज की शाम

आज भी, जब कभी शाम ढलती है, खोह नदी के किनारे एक दीप जलता है।

कोई नहीं जानता कौन जलाता है। पर वह जलता है। हर शाम। हर रात। कभी नहीं बुझता।

लोग कहते हैं वह साधु की आत्मा है। वह अब भी वहीं है। बस मौन है। और अपने मौन से लोगों को सच का रास्ता दिखाता है।

बच्चे वहाँ जाते हैं तो डरते नहीं। बूढ़े जाते हैं तो शांति पाते हैं। यात्री जाते हैं तो सुकून पाते हैं।

14. उपसंहार

मौन साधु ने कभी कोई उपदेश नहीं दिया। कोई भाषण नहीं दिया। कोई पुस्तक नहीं लिखी। उसने बस चुप रहना सीखा। और उस चुप्पी में इतनी शक्ति थी कि लोगों के जीवन बदल गए। वह सिखा गया

कभी-कभी सबसे बड़ी सीख शब्दों से नहीं, मौन से मिलती है।

कभी-कभी सबसे बड़ा उपदेश चुप रहकर दिया जाता है।

और कभी-कभी एक छोटा-सा दीप पूरे पहाड़ को रोशन कर सकता है।

15. संदेश

आज जब भी दुगड्डा में कोई झूठ बोलता है, कोई धोखा देता है, कोई किसी का बुरा करता है तो उसे एक अजीब-सी बेचैनी होती है। जैसे कोई उसे देख रहा हो। जैसे कोई मौन साधु उसकी आत्मा में झाँक रहा हो।

और जो सच्चे होते हैं, उन्हें खोह नदी के किनारे जाकर अपार शांति मिलती है। आज वहां पे एक छोटा सा मंदिर बना है बाहर पेड़ के नीचे आराम करने के लिए और बैठने के लिए बेंच लगा दी है

क्योंकि वहाँ मंदिर में आज भी एक दीप जलता है। मौन साधु का दीप। सच की लौ पहाड़ की आत्मा।

अतुल नैथानी

रात का यात्री – फतेहपुर का मोड़
(गढ़वाल की पहाड़ियों से एक आत्मिक कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। दुगड्डा और फतेपुर की पहाड़ी पृष्ठभूमि से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. फतेपुर का वो मोड़

गढ़वाल में दुगड्डा से ऊपर की ओर जाते ही एक चढ़ाई शुरू होती है

गुमखाल की चढ़ाई और दूसरी तरफ का रास्ता है लैन्सीडौन

सड़क पहाड़ी से सटकर निकलती है, एक तरफ ऊँची दीवार-सी खड़ी चट्टान, दूसरी तरफ गहरी खाई और उसमें चमकती खोह नदी। ऊपर देवदार के ऊँचे-ऊँचे पेड़, जो हवा में झूमते रहते हैं, जैसे कोई पुराना गीत गुनगुना रहे हों।

इसी चढ़ाई पर एक पुराना मोड़ है। नाम किसी ने नहीं रखा, पर गाँव वाले बस 'फतेपुर का मोड़' कहते हैं।

दिन में यह जगह बहुत सुंदर लगती है। सूरज की किरणें देवदारों के बीच से छनकर आती हैं, नीचे नदी चाँदी की तरह चमकती है, और हवा में बुरांश के फूलों की खुशबू घुली रहती है। यात्री यहाँ रुकते हैं, कुछ देर ठहरते हैं, तस्वीरें खींचते हैं, और फिर आगे बढ़ जाते हैं।

पर गाँव के बुज़ुर्ग कहते हैं रात को यह मोड़ कुछ और ही हो जाता है। रात को यहाँ एक अजनबी यात्री दिखाई देता है।

2. हरिदत्त

बहुत साल पहले की बात है।

दुगड्डा के एक छोटे-से स्कूल में शिक्षक थे। नाम था हरिदत्त, पर स्वभाव था उनका बिल्कुल 'हरि' जैसा सरल, दयालु, और हर किसी की मदद के लिए तैयार।

वह रोज़ सुबह जल्दी उठते, अपने गाँव से दस किलोमीटर पैदल चलकर स्कूल जाते, और शाम को वापस लौटते। रास्ते में वही फतेपुर की चढ़ाई, वही मोड़, वही देवदार के पेड़।

उनकी कक्षा में गरीब किसानों के बच्चे पढ़ते थे। हरिदत्त उन्हें सिर्फ किताबी ज्ञान ही नहीं, जीवन की सीख भी देते थे। "बेटा, पहाड़ हमें सिखाता है कि ऊँचा उठना है तो जड़ें मजबूत करनी पड़ती हैं।" वह अक्सर कहा करते थे

उस दिन स्कूल में थोड़ी देर हो गई थी। एक बच्चे की तबीयत खराब हो गई, हरिदत्त उसे दवा दिलाने ले गए, फिर उसके घर छोड़ने गए। जब वापस लौटे तो शाम ढल चुकी थी।

3. वह रात

हरिदत्त ने सोचा चलो, जल्दी चलूँगा तो पहुँच जाऊँगा।

पर जैसे-जैसे वह फतेपुर की चढ़ाई पर चढ़े, वैसे-वैसे धुंध बढ़ती गई। पहाड़ों पर अचानक कोहरा छा गया। इतना घना कि हाथ को हाथ न सूझे।

हरिदत्त की साँस फूलने लगी। रास्ता पहचानना मुश्किल हो गया। वह रुक-रुककर आगे बढ़ रहे थे।

तभी उन्होंने देखा सड़क किनारे, उसी मोड़ के पास, एक बूढ़ा आदमी खड़ा था।

बहुत बूढ़ा। सफेद बाल, सफेद दाढ़ी, और एक पुरानी-सी कमली ओढ़े। आँखों में एक अजीब-सी चमक, जैसे सैकड़ों सालों की ज्ञान उनमें समाई हो।

हरिदत्त थोड़ा डरे, पर फिर सोचा कोई राहगीर होगा, रास्ता भूल गया होगा, पास गए।

बूढ़े ने हल्की-सी मुस्कान के साथ कहा

"बेटा, क्या मुझे थोड़ा रास्ता दिखा दोगे ? मैं अपना गाँव भूल गया हूँ।"

आवाज़ बहुत धीमी थी, पर बहुत गहरी। जैसे पहाड़ों की गूँज हो।

हरिदत्त को दया आ गई। उन्होंने कहा "चलिए बाबा, मैं आपको रास्ता दिखा दूँगा।"

4. साथ का सफर

दोनों साथ चलने लगे।

बूढ़ा बहुत धीरे चल रहा था, पर उसके कदमों में एक अजीब-सी स्थिरता थी। हरिदत्त को लगा, जैसे यह आदमी पहाड़ों का ही हिस्सा हो।

थोड़ी दूर चलने के बाद बूढ़ा बोला

"बेटा, क्या तू जानता है, पहले लोग कैसे रहते थे ?"

हरिदत्त ने कहा "नहीं बाबा, बताइए।"

बूढ़ा बोला पहले लोग पहाड़ों को पूजते थे। हर पेड़, हर पत्थर, हर नदी में देवता देखते थे। जंगल से जितनी जरूरत होती, उतना ही लेते। पेड़ काटते, तो पहले उससे माफी माँगते। नदी में उतरते, तो पहले प्रणाम करते

"और अब ?" हरिदत्त ने पूछा।

"अब लोग भूल गए। पहाड़ों को सिर्फ पत्थर समझ लिया। जंगलों को सिर्फ लकड़ी समझ लिया। नदियों को सिर्फ पानी। पर पहाड़ नहीं भूलते। वह देखते हैं। और जब कभी कोई उन्हें याद करता है, तो वह उसकी मदद करते हैं।"

हरिदत्त चुपचाप सुनता रहा।

5. पहाड़ की बातें

बूढ़ा और भी बातें करने लगा

"देख बेटा, यह देवदार का पेड़ पचास साल में बड़ा होता है, पर उसकी जड़ें सौ साल तक पत्थरों में घुसती रहती हैं। यही सिखाते हैं - पहाड़ धैर्य।"

"और यह खोह नदी, हर साल बाढ़ लाती है, पर कभी किनारे नहीं छोड़ती यही सिखाती है - समर्पण।"

और यह बुरांश का फूल, बर्फ में भी खिलता है। यही सिखाता है- हिम्मत

हरिदत्त के आँखें खुली की खुली रह गईं। यह कोई साधारण बूढ़ा नहीं था। यह तो पहाड़ों का ज्ञानी था।

"बाबा, आप कौन हैं ?" उन्होंने पूछा।

बूढ़ा बस मुस्कुराया।

6. वह पल

कुछ दूर और चलने के बाद, जहाँ से रास्ता दो हिस्सों में बँटता था एक ऊपर गाँव की तरफ, एक नीचे नदी की तरफ वहाँ बूढ़ा रुक गया।

"बस बेटा, अब मैं यहीं से चला जाऊँगा।"

हरिदत्त ने कहा "पर बाबा, आपका गाँव कौन-सा है ? मैं आपको छोड़ आता हूँ।"

बूढ़ा मुस्कुराया। फिर बोला

"मेरा गाँव वहाँ है, जहाँ हर पत्थर में भगवान बसता है। मेरा गाँव वहाँ है, जहाँ हर पेड़ एक कहानी कहता है। मेरा गाँव वहाँ है, जहाँ हवा में पूर्वजों की आवाज़ घुली है।"

यह कहकर वह धीरे-धीरे उस रास्ते पर बढ़ने लगा जो नीचे नदी की तरफ जाता था।

हरिदत्त ने आवाज़ लगाई "बाबा, वह रास्ता खतरनाक है। वहाँ से कोई नहीं जाता।"

बूढ़ा पलटा। आखिरी बार मुस्कुराया। फिर आगे बढ़ गया।

हरिदत्त ने सोचा थोड़ा और देख लूँ। पर जैसे ही उन्होंने उस रास्ते पर नज़र डाली

वहाँ कोई नहीं था।

बस देवदार के पेड़ थे, और उनमें हवा की सरसराहट।

7. सन्नाटा

हरिदत्त वहीं खड़े रह गए।

उन्होंने चारों तरफ देखा। कोई नहीं। नीचे नदी बह रही थी, ऊपर देवदार झूम रहे थे, और हवा में एक अजीब-सी खुशबू थी जैसे किसी ने अभी-अभी अगरबत्ती जलाई हो।

वह समझ नहीं पा रहे थे यह सपना था या सच ? उन्होंने अपने आपको चिकोटी काटी। नींद नहीं थी। वह जाग रहे थे।

तभी उन्हें याद आया बूढ़े ने जो बातें कही थीं, वह सब उनके मन में गूँज रही थीं। पेड़ों की बातें, नदी की बातें, पहाड़ की बातें। जैसे कोई उनके भीतर उतर गया हो।

वह धीरे-धीरे अपने गाँव की तरफ चल पड़े। पूरी रात सो नहीं पाए। बस उस बूढ़े के बारे में सोचते रहे।

8. बुज़ुर्गों की बात

अगले दिन हरिदत्त ने गाँव के बुज़ुर्गों को सारी बात बताई।

वे सब चुप हो गए। फिर सबसे बुज़ुर्ग नब्बे साल के दादा भवानी सिंह बोले

"बेटा, तुम्हें पहाड़ की आत्मा मिली थी।"

हरिदत्त चौंके। "क्या ?"

"हाँ। हमारे बुज़ुर्ग बताते थे कि फतेपुर के उस मोड़ पर कभी-कभी एक बूढ़ा यात्री दिखाई देता है। वह कोई साधारण आदमी नहीं है। वह इस पहाड़ की आत्मा है। जब भी कोई सच्चे मन से पहाड़ का सम्मान करता है, कोई पहाड़ को समझना चाहता है, तो वह उसकी मदद करने आता है।"

"पर उसने मुझसे रास्ता पूछा था!" हरिदत्त ने कहा।

दादा भवानी सिंह मुस्कुराए। "बेटा, वह रास्ता नहीं भूला था। वह तो बस तुम्हें परख रहा था। देख रहा था कि तुममें कितनी दया है, कितनी इंसानियत है। और तुमने परीक्षा पास कर ली।"

9. बदलाव

उस दिन के बाद हरिदत्त बदल गए।

वह पहले भी अच्छे इंसान थे, पर अब और भी ज्यादा। वह बच्चों को पढ़ाते, तो साथ में यह भी सिखाते कि पहाड़ों से प्यार करो, जंगलों की इज्जत करो, नदियों को मत गंदा करो।

वह अपने स्कूल में हर साल एक दिन 'पहाड़ दिवस' मनाते। बच्चों को पेड़ लगाने ले जाते। उन्हें समझाते कि यह देवदार तुम्हारे बच्चों के लिए ऑक्सीजन देगा, यह बुरांश तुम्हारे पोतों के लिए फूल देगा

धीरे-धीरे पूरा गाँव जागरूक हो गया। लोग जंगल काटना कम कर दिए। नदी में कूड़ा नहीं डालते थे। पेड़ लगाने का चलन शुरू हो गया।

सबने कहा यह सब उस रात के यात्री की कृपा है।

10. सालों बाद

साल बीत गए। हरिदत्त अब बूढ़े हो गए थे। वह अब स्कूल नहीं जाते थे, पर उनका पढ़ाया हुआ असर अब भी था।

उनके कई छात्र बड़े आदमी बने कोई डॉक्टर, कोई इंजीनियर, कोई शिक्षक पर हर साल, एक खास दिन, वह सब इकट्ठा होते। हरिदत्त को मिलने आते और फिर सब मिलकर फतेपुर के उस मोड़ पर जाते।

वहाँ जाकर वह चुपचाप खड़े रहते। कुछ देर। फिर हाथ जोड़ते। किसी को कुछ नहीं दिखता, पर सबको एक अजीब-सी शांति मिलती।

हरिदत्त कहते "वह यात्री अब भी यहीं है। हवा में, पानी में, पत्तों की सरसराहट में। वह देख रहा है कि हम क्या कर रहे हैं।"

11. आज

आज भी फतेपुर का वह मोड़ वैसा ही है।

सड़क पहले से बेहतर है, पर वह मोड़ अब भी वहीं है। देवदार के पेड़ अब भी हैं, खोह नदी अब भी बहती है, और हवा में वही खुशबू है।

गाँव के बुज़ुर्ग कहते हैं

"बेटा, अगर कभी रात को उस मोड़ से गुजरो और कोई बूढ़ा यात्री दिखे, तो डरना मत। उसकी मदद करना। वह कोई साधारण यात्री नहीं है। वह हमारे पहाड़ की आत्मा है। वह देखता है कि कौन सच्चा है, कौन झूठा।"

और अगर कोई इंसान सच्चे मन से पहाड़ का सम्मान करे, तो गढ़वाल के जंगल और रास्ते उसे कभी अकेला नहीं छोड़ते। वह यात्री हमेशा उसके साथ होता है दिखाई न देकर भी, सुनाई न देकर भी।

12. उपसंहार

हरिदत्त अब इस दुनिया में नहीं हैं। पर उनकी कहानी आज भी ज़िंदा है।

लोग कहते हैं जब भी कोई रात में फतेपुर के मोड़ से गुज़रता है, तो उसे एक हल्की-सी आवाज़ सुनाई देती है

"बेटा, क्या मुझे थोड़ा रास्ता दिखा दोगे ?"

और जो सच्चे मन से रुकता है, उसकी मदद करता है, उसे जीवन भर पहाड़ की कृपा मिलती है।

13. संदेश

पहाड़ सिर्फ पत्थर नहीं होते।

उनमें आत्मा होती है,

उनमें जीवन होता है,

उनमें कहानियाँ होती हैं।

जो पहाड़ों का सम्मान करता है,

पहाड़ उसे कभी अकेला नहीं छोड़ते।

और जो सच्चे मन से रास्ता दिखाता है,

उसे खुद रास्ता मिल जाता है।

अतुल नैथानी

लंगूरगढ़ किले की रात – पहाड़ के रक्षक
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक ऐतिहासिक लोककथा)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। दुगड्डा के आस-पास की पहाड़ी पृष्ठभूमि और लोककथाओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. लंगूरगढ़ का किला

दुगड्डा से ऊपर, जहाँ पहाड़ियाँ और ऊँची हो जाती हैं और रास्ते संकरे हो जाते हैं, वहाँ घने जंगलों के बीच एक पुराना किला है लंगूरगढ़।

आज वहाँ सिर्फ टूटी-फूटी दीवारें हैं। कहीं पर पत्थरों के ढेर, कहीं पर झाड़ियाँ, कहीं पर दीवारों पर उग आई काई। हवा जब चलती है, तो उन दरारों से गुजरकर एक अजीब-सी आवाज़ निकलती है, जैसे कोई पुरानी कहानी फुसफुसा रहा हो।

पर बुज़ुर्ग कहते हैं यह किला सिर्फ पत्थरों का ढेर नहीं है। इसकी अपनी एक कहानी है, अपनी एक आत्मा है।

बहुत साल पहले, यह किला पहाड़ के एक छोटे राजा का गढ़ था। राजा का नाम था वीरेंद्र सिंह। वह बहुत पराक्रमी था, पर उससे भी बड़ी बात वह बहुत दयालु था। उसकी प्रजा उसे भगवान मानती थी। उसने कभी किसी पर जुल्म नहीं किया। जंगलों को नहीं कटवाया। नदियों को नहीं रोका। वह जानता था पहाड़ों की असली ताकत उनके जंगलों और नदियों में है।

पर समय बदला। दुश्मन आए। किले पर हमले हुए। वीरेंद्र सिंह ने बहुत वीरता से लड़ाई लड़ी, पर आखिर में वह घायल हो गया। कहते हैं, उसने अपने आखिरी सांस तक किला नहीं छोड़ा। उसके सैनिक भी उसके साथ वहीं लड़ते हुए शहीद हो गए।

तब से वह किला खंडहर हो गया। पर लोग कहते हैं उस राजा और उसके सैनिकों की आत्माएँ आज भी वहाँ रहती हैं। अपने किले की रखवाली करती हैं। पहाड़ की रक्षा करती हैं।

2. भीमू

उसी गाँव में भीमू नाम का एक युवा चरवाहा रहता था।

भीमू साधारण-सा लड़का था। उम्र कोई अठारह-उन्नीस साल। काले-साँवले रंग का, पतला-दुबला, पर बहुत मेहनती। सुबह होते ही वह अपनी भेड़ें लेकर पहाड़ों पर निकल जाता। शाम को लौटता। उसकी ज़िन्दगी बहुत सादी थी भेड़ें, पहाड़, और कभी-कभार गाँव के दोस्तों के साथ बैठकर बातें

पर भीमू को एक चीज़ बहुत पसंद थी कहानियाँ।

गाँव के बुज़ुर्ग जब भी कोई पुरानी कहानी सुनाते, भीमू सबसे आगे बैठता। आँखें फाड़-फाड़कर सुनता। राजाओं की कहानियाँ, युद्धों की कहानियाँ, भूत-प्रेत की कहानियाँ उसे सब पसंद थीं।

सबसे ज्यादा पसंद थी लंगूरगढ़ के किले की कहानी।

दादा भवानी सिंह कहते थे भीमू, उस किले में रात मत बिताना। वहाँ पुराने राजा की आत्मा रहती है। उसके सैनिक रात को फिर से जीवित हो जाते हैं

भीमू कहता "दादा, काश एक बार मैं उन्हें देख पाता!"

दादा हँसते "पागल, तू जाना मत वहाँ।"

3. वह दिन

एक दिन भीमू अपनी भेड़ों को लेकर सुबह-सुबह निकल गया। उस दिन वह थोड़ा आगे तक जाना चाहता था, क्योंकि सुना था कि आगे की पहाड़ियों में बहुत हरी-भरी घास है।

वह चलता गया, चलता गया। रास्ते पहचाने हुए थे, पर धीरे-धीरे वह नए इलाके में पहुँच गया। पेड़ घने हो गए। रास्ते संकरे हो गए। सूरज की किरणें पेड़ों के बीच से छन-छनकर आ रही थीं।

भीमू मस्ती में था। उसे पता ही नहीं चला कि कब शाम ढल गई।

जब उसने देखा, तो सूरज पहाड़ों के पीछे डूब रहा था। चारों तरफ लालिमा फैल गई थी। उसने जल्दी-जल्दी भेड़ें इकट्ठी कीं और वापस लौटना चाहा पर तभी उसने देखा सामने वह खड़ा था।

लंगूरगढ़ का किला।

टूटी दीवारें, ऊँचे-ऊँचे खंभे, और बीच में एक बड़ा-सा आँगन। शाम की आखिरी रोशनी में वह बहुत भयानक लग रहा था। पर अजीब-सा आकर्षक भी।

भीमू को दादा की बात याद आई "लंगूरगढ़ में रात मत बिताना।"

पर अब बहुत देर हो चुकी थी। अंधेरा हो गया था। रास्ता भी साफ नहीं दिख रहा था। भेड़ें भी थक गई थीं।

भीमू ने सोचा चलो, आज यहीं रात काट लेते हैं। सुबह होते ही चल देंगे

उसने किले के बाहर एक सुरक्षित जगह ढूंढी। भेड़ों को बिठाया। खुद भी एक पत्थर पर बैठ गया। आग जलाने की कोशिश की, पर लकड़ियाँ गीली थीं। आखिर में उसने अपनी कमली ओढ़ ली और बैठा रहा।

4. रात का सन्नाटा

रात गहरी हो गई।

चाँद निकल आया था। पूर्णिमा की रात थी आसमान में चाँद पूरा गोल चमक रहा था। उसकी चाँदनी में किले की टूटी दीवारें चाँदी की तरह चमक रही थीं।

जंगल बिल्कुल शांत था। पक्षी चुप थे। जानवर भी नहीं बोल रहे थे। बस हवा चल रही थी, और उसकी आवाज़ दीवारों की दरारों से गुजरकर एक अजीब-सी सीटी जैसी सुनाई दे रही थी।

भीमू की आँख लग गई थी। पर अचानक...एक आवाज़।

कदमों की आवाज़।

भीमू चौंककर उठ बैठा। दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। उसने कान लगाए आवाज़ किले के अंदर से आ रही थी। धीमी-धीमी, पर साफ।

वह डर गया। पर उसकी जिज्ञासा उसके डर से बड़ी थी। वह धीरे-धीरे उठा, एक टूटी दीवार के पीछे छिप गया। और झाँककर देखने लगा।

5. दृश्य

चाँदनी में जो दृश्य दिखा, उसे देख भीमू की साँस रुक गई।

किले के अंदर, उस टूटे आँगन में, सैनिकों की परछाइयाँ चल रही थीं। न जाने कहाँ से आ गई थीं। कोई मशाल लिए खड़ा था, कोई तलवार लिए घूम रहा था, कोई दीवार पर चढ़कर दूर तक देख रहा था बिल्कुल वैसे ही जैसे कोई किले की रखवाली कर रहा हो।

वे पारदर्शी थे। उनके अंग साफ नहीं दिखते थे, पर उनकी आकृतियाँ बिल्कुल साफ़ थीं। जैसे कोई धुएँ से बनी मूर्तियाँ हों।

भीमू की आँखें फटी की फटी रह गईं। उसने देखा किले के बीचों-बीच, एक ऊँचे चबूतरे पर, एक व्यक्ति खड़ा था। उसके सिर पर राज मुकुट था। हाथ में तलवार। चेहरे पर गंभीरता। वह दूर क्षितिज की तरफ देख रहा था, जैसे दुश्मनों की तलाश कर रहा हो।

वही था राजा वीरेंद्र सिंह।

उसके चारों तरफ उसके सैनिक थे। सब चुप। सब अपनी जगह पर। बस आ रहे-जा रहे थे, जैसे कोई अनुष्ठान चल रहा हो।

भीमू का दिल इतनी जोर से धड़क रहा था कि उसे लगा, वे सुन लेंगे। उसने अपना मुँह दबा लिया। साँस रोक ली।

6. वह पल

तभी अचानक राजा मुड़ा।

उसकी नज़र सीधी उस दीवार पर पड़ी, जिसके पीछे भीमू छिपा था। भीमू को लगा, उसका दिल धड़कना बंद कर देगा। वह जम गया। हिल नहीं पा रहा था। राजा धीरे-धीरे उसकी तरफ बढ़ा। उसके कदमों की आवाज़ नहीं थी, पर वह आ रहा था। पास आया। और भी पास। फिर वह उस दीवार के सामने आकर रुक गया। बस दो कदम की दूरी पर।

भीमू ने आँखें बंद कर लीं। उसे लगा, अब उसकी मौत आ गई। पर कुछ नहीं हुआ।

फिर एक आवाज़ आई। बहुत शांत, बहुत गंभीर, पर भरा हुआ जैसे पूरे पहाड़ की गूँज हो

"डर मत... बेटा।"

भीमू ने आँखें खोलीं। सामने राजा खड़ा था। उसके चेहरे पर कोई गुस्सा नहीं था। कोई क्रोध नहीं था। बस एक अपार शांति थी, और उसमें दया भी।

"तू... तू असली है ?" भीमू ने काँपते हुए पूछा।

राजा मुस्कुराया। वह मुस्कान बहुत हल्की थी, पर बहुत गहरी।

"हम सब असली हैं, बेटा। उतने ही असली जितने ये पहाड़, ये पेड़, यह हवा। हम मरे नहीं हैं। हम बस इस किले में रहते हैं।"

7. राजा की बातें

राजा उसी दीवार के पास बैठ गया। भीमू अब भी काँप रहा था, पर उसका डर धीरे-धीरे कम हो रहा था।

"बहुत साल पहले हमने यह किला बसाया था," राजा ने कहना शुरू किया "हमने सोचा था यह किला हमेशा रहेगा। हमारे बच्चे, हमारे पोते, उनके बच्चे सब यहाँ रहेंगे। पर समय ने करवट बदली। दुश्मन आए। हम लड़े। हम सब मर गए। पर यह किला... यह किला हमारा था। हम इसे छोड़कर नहीं जा सकते थे।"

भीमू ने पूछा "तो आप सब यहीं रहते हैं ? सैकड़ों सालों से ?"

राजा ने सिर हिलाया। "हाँ। हम यहीं हैं। रात को जब पूर्णिमा होती है, हम फिर से जीवित हो जाते हैं। वही काम करते हैं जो हम करते थे किले की रखवाली।"

"पर अब किला तो टूट गया है। कोई दुश्मन नहीं है। किससे रखवाली ?"

राजा की आँखों में एक चमक आई। "बेटा, दुश्मन बदल गए हैं। अब वे तलवारें लेकर नहीं आते।

अब वे आते हैं जंगल काटने, पहाड़ तोड़ने, नदियाँ सुखाने।

हम उनसे लड़ते हैं। हम उनकी आत्माओं को रोकते हैं।"

भीमू चौंक गया।

8. अंतिम वचन

राजा उठा। उसने अपनी तलवार ऊपर उठाई। चाँदनी में वह चमक उठी।

"देख बेटा, हम सबने यह पहाड़ पूर्वजों से पाया था। हमारा कर्तव्य है इसे बचाना। भले ही हम मर गए, हमारी आत्माएँ आज भी यहाँ हैं। और जब तक कोई एक इंसान पहाड़ का सम्मान करेगा, हम यहाँ रहेंगे।"

भीमू की आँखों से आँसू बहने लगे। वह उठा। राजा के सामने खड़ा हो गया।

"राजन, मैं... मैं भी पहाड़ की रक्षा करूँगा। मैं वादा करता हूँ।"

राजा मुस्कुराया। उसने अपना हाथ भीमू के सिर पर रखा। वह हाथ ठंडा था, पर उसमें एक अजीब-सी गर्माहट थी।

"धन्यवाद बेटा। हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं। जाओ, अब अपने गाँव लौटो और यह बात सबको बताओ पहाड़ सिर्फ पत्थर नहीं होते, उनमें आत्माएँ बसती हैं।"

फिर वह धीरे-धीरे पीछे हटा। उसके साथ सारे सैनिक भी। सब धीरे-धीरे धुंध में घुलने लगे। कुछ ही पलों में किला फिर से वैसा ही खाली और खामोश हो गया।

बस हवा चल रही थी, और दीवारों की दरारों से वही पुरानी आवाज़ आ रही थी।

9. सुबह

भीमू उस रात सो नहीं पाया। वह उसी दीवार के पास बैठा रहा। राजा की बातें सोचता रहा।

सुबह जब सूरज निकला, किला फिर से वही पुराना खंडहर था। टूटी दीवारें, झाड़ियाँ, पत्थरों के ढेर। कोई सैनिक नहीं, कोई राजा नहीं, कोई आवाज़ नहीं।

भीमू ने अपनी भेड़ें इकट्ठी कीं। वहाँ से चल दिया। चलते-चलते बार-बार पीछे मुड़कर देखता। किला दूर तक दिख रहा था सुबह की धूप में सुनहरा।

वह गाँव पहुँचा तो सबने पूछा कहाँ था कल रात ? हम बहुत परेशान हुए

भीमू ने सबको सारी कहानी सुनाई। कैसे वह किले में रुका, कैसे उसने राजा और सैनिकों को देखा, कैसे राजा ने उससे बात की,सब चुपचाप सुनते रहे फिर दादा भवानी सिंह बोले

"बेटा, तुम सच कह रहे हो। यह किला सिर्फ पत्थरों का ढेर नहीं है। उसमें हमारे पूर्वजों की आत्माएँ बसती हैं। वे आज भी हमारी रक्षा कर रहे हैं।"

10. आज

आज भी लोग कहते हैं कभी-कभी पूर्णिमा की रात, लंगूरगढ़ के खंडहरों में हल्की-सी मशाल की रोशनी दिखाई देती है। कोई कहता है यह आग है, कोई कहता है यह बिजली चमकती है। पर बुज़ुर्ग मुस्कुराकर कहते हैं

"वह राजा वीरेंद्र सिंह है। अपने सैनिकों के साथ आज भी किले की रखवाली कर रहा है।"

और भीमू ? वह अब बूढ़ा हो गया है। पर हर पूर्णिमा की रात वह किले के पास जाता है। राजा को याद करता है। उसे धन्यवाद देता है। और वापस लौट आता है।

कभी-कभी उसे लगता है, जैसे हवा में कोई कह रहा हो "धन्यवाद भीमू। तूने हमारी कहानी ज़िंदा रखी।"

11. उपसंहार

लंगूरगढ़ का किला आज भी वैसा ही है। टूटा हुआ, बिखरा हुआ, पर किसी अदृश्य शक्ति से सुरक्षित।

पहाड़ के लोग जब भी उसके पास से गुजरते हैं, सिर झुकाते हैं। मन ही मन प्रार्थना करते हैं। उन पूर्वजों को याद करते हैं, जिन्होंने इस पहाड़ को बसाया, संवारा, और आज भी इसकी रक्षा कर रहे हैं।

क्योंकि इतिहास कभी पूरी तरह मरता नहीं। वह पहाड़ों की खामोशी में जीवित रहता है। उनकी हवा में, उनके पानी में, उनके पत्थरों में बस सुनने का दिल चाहिए।

12. संदेश

पहाड़ों का हर पत्थर एक कहानी कहता है। हर खंडहर में एक इतिहास छिपा है। हर हवा के झोंके में पूर्वजों की आवाज़ है। जो इसे सुन सकते हैं, उनके

लिए पहाड़ कभी मरे नहीं। वे हमेशा जीवित हैं हमारे भीतर, हमारे आसपास, हर सांस में।

अतुल नैथानी

खोह नदी की चेतावनी – पहाड़ को मत काटो
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक प्रकृति लोककथा)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। दुगड्डा के आस-पास की पहाड़ी पृष्ठभूमि और लोककथाओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. खोह नदी का किनारा

दुगड्डा के पास, जहाँ पहाड़ियाँ एक-दूसरे से लिपटी हुई हैं और देवदार के पेड़ आसमान को छूने की कोशिश कर रहे हैं, वहाँ एक नदी बहती है खोह नदी।

बहुत सुंदर है यह नदी। दिन में जब सूरज की किरणें उसके पानी पर पड़ती हैं, तो वह चाँदी की तरह चमकती है। छोटे-छोटे पत्थर उसके पानी के नीचे दिखते हैं, और किनारे पर उगे बुरांश के फूल उसमें अपना प्रतिबिंब देखते हैं

उसकी आवाज़ कल-कल, छल-छल ऐसी लगती है जैसे कोई पुरानी पहाड़ी धुन बज रही हो। बच्चे किनारे बैठकर घंटों उसे सुनते रहते। बुज़ुर्ग कहते हैं कि इस नदी में पहाड़ की आत्मा बोलती है।

पर यह नदी सिर्फ पानी नहीं बहाती। यह चेतावनी भी देती है। और जो इसकी चेतावनी नहीं सुनता, उसे बहुत कीमत चुकानी पड़ती है।

2. जगत सिंह

उसी दुगड्डा के पास एक गाँव था पिपली गाँव। वहाँ जगत सिंह नाम का एक आदमी रहता था।

जगत सिंह लकड़ी का व्यापारी था। शुरू में वह बहुत अच्छा आदमी था। जितनी जरूरत होती, उतनी ही लकड़ी काटता। सूखे पेड़ काटता, गिरे हुए पेड़ों को उठाता। गाँव वाले उससे खुश थे।

पर धीरे-धीरे उसके मन में लालच आ गया।

उसने देखा शहरों में लकड़ी के बहुत अच्छे दाम मिलते हैं। बस यह सोचकर उसने जंगल के बड़े-बड़े देवदार काटने शुरू कर दिए। हरे-भरे, सैकड़ों साल पुराने पेड़ जिन्होंने कई पीढ़ियों को छाया दी थी, जिनकी जड़ों ने पहाड़ को मज़बूती दी थी वह एक-एक करके कटने लगे।

गाँव के बुज़ुर्गों ने उसे बहुत समझाया।

दादा भवानी सिंह ने उससे कहा "बेटा जगत, यह जंगल पहाड़ की साँस हैं जैसे इंसान बिना साँस के नहीं रह सकता, वैसे ही पहाड़ बिना जंगल के नहीं रह सकता। अगर ये पेड़ कट गए, तो नदियाँ भी रूठ जाएँगी।"

पर जगत सिंह हँसकर टाल देता। "दादा, आप पुरानी बातें करते हैं। यह व्यापार है। मुझे अपने बच्चों के लिए कमा कर रखना है।"

3. वह रात

वह रात भूली नहीं जाती।

भादों का महीना था। आसमान में बादल छाए हुए थे। हवा में नमी थी, जैसे कुछ होने वाला हो।

जगत सिंह अपने मज़दूरों को लेकर जंगल में गया। उस रात वह खोह नदी के पास के जंगल में पेड़ काट रहा था। वहाँ बहुत पुराने देवदार थे इतने बड़े कि पाँच आदमी मिलकर भी उनके तने को घेर नहीं सकते थे।

"जल्दी करो," वह मज़दूरों से कह रहा था। "आज रात भर काम करना है कल सुबह तक दस पेड़ और गिरने चाहिए।"

कुल्हाड़ियाँ चल रही थीं। धड़-धड़ की आवाज़ें पूरे जंगल में गूँज रही थीं। पेड़ गिर रहे थे। उनके गिरने की आवाज़ ऐसी थी जैसे कोई चीख रहा हो।

4. हवा का बदलना

रात के करीब दस बजे होंगे।

अचानक हवा तेज़ हो गई। इतनी तेज़ कि पेड़ झुक गए। मज़दूरों के हाथ से कुल्हाड़ियाँ गिरने लगीं।

"यह क्या हो रहा है ?" एक मज़दूर ने डरते हुए पूछा।

तभी खोह नदी से एक आवाज़ आई। पहले तो हल्की, फिर तेज़, फिर इतनी तेज़ कि पूरा जंगल गूँज उठा।

नदी का पानी जोर से गरजने लगा। जैसे कोई भयंकर जानवर दहाड़ रहा हो

मज़दूर डर गए। उन्होंने औज़ार फेंके और भागने लगे।

"भागो! भागो! कुछ हो रहा है!"

सब भाग गए। बस जगत सिंह वहीं खड़ा रह गया।

5. नदी की आवाज़

जगत सिंह भी डरा हुआ था, पर उसकी जिद उसके डर से बड़ी थी। वह वहीं खड़ा रहा।

"मैं नहीं डरता। यह सब हवा-पानी का खेल है।"

तभी उसे लगा नदी की आवाज़ बदल गई है। वह अब सिर्फ गरज नहीं रही थी। वह शब्द बनकर गूँज रही थी। साफ-साफ शब्द।

हवा में एक आवाज़ गूँजी

"पहाड़ को मत काटो... वरना पहाड़ तुम्हें याद रखेगा।"

जगत सिंह के रोंगटे खड़े हो गए। उसने चारों तरफ देखा कोई नहीं था। सिर्फ पेड़ थे, नदी थी, और हवा थी।

फिर वही आवाज़ और तेज़

"पहाड़ को मत काटो... वरना पहाड़ तुम्हें याद रखेगा।"

उसके हाथ से कुल्हाड़ी गिर पड़ी। धम्म से ज़मीन पर गिरी, और उसकी आवाज़ सन्नाटे में गूँज गई।

6. पहाड़ का गुस्सा

तभी पहाड़ी से पत्थर गिरने लगे।

पहले छोटे-छोटे कंकड़, फिर बड़े-बड़े पत्थर। धड़ाधड़ जैसे किसी ने पहाड़ को हिला दिया हो।

और नदी वह तो उफान पर आ गई। पानी इतना बढ़ गया, इतनी तेज़ी से बढ़ गया, कि जगत सिंह को अपनी जान बचाकर भागना पड़ा।

वह भागा पत्थरों से बचता हुआ, पानी से बचता हुआ, अँधेरे में ठोकरें खाता हुआ। कितनी बार गिरा, कितनी बार चोट खाई, उसे याद नहीं।

बस इतना याद है पीछे से नदी की गर्जना सुनाई दे रही थी, और हवा में वही शब्द गूँज रहे थे

"पहाड़ को मत काटो... वरना पहाड़ तुम्हें याद रखेगा।"

7. सुबह का दृश्य

सुबह जब सूरज निकला, जगत सिंह ने देखा वह गाँव से काफी दूर, किसी पहाड़ी पर बैठा था। रात भर भागता रहा था।

वह धीरे-धीरे उस जगह गया, जहाँ उसने पेड़ काटे थे।

देखकर उसके पैरों तले ज़मीन खिसक गई।

जहाँ कल रात घना जंगल था, वहाँ अब सिर्फ खाली ज़मीन थी। और उस खाली ज़मीन पर मिट्टी खिसक गई थी। पूरी ढलान बह गई थी। नीचे के खेत मिट्टी और पत्थरों से भर गए थे। फसलें बर्बाद हो गई थीं। किसानों की साल भर की मेहनत पर पानी फिर गया था।

और नदी वह फिर से शांत थी। कल रात की उफान का कोई निशान नहीं था। बस बह रही थी कल-कल, छल-छल जैसे कुछ हुआ ही न हो।

8. अहसास

जगत सिंह वहीं खड़ा रह गया। उसके पैर हिल नहीं रहे थे।

तभी एक बुज़ुर्ग किसान वहाँ आया उसी का खेत था, जो बर्बाद हो गया था उसने जगत सिंह को देखा। उसकी आँखों में गुस्सा नहीं था, बस दर्द था।

"जगत, देख लिया ? यह तेरे लालच का नतीजा है। हमने तुझे बहुत समझाया था। पर तू नहीं माना। अब देख मेरे खेत बर्बाद, तेरे पेड़ काटने से, और पहाड़... पहाड़ खाली।"

जगत सिंह के आँखों से आँसू बहने लगे। उसने उस बुज़ुर्ग के पैर पकड़ लिए।

"बाबा, मुझे माफ कर दो। मुझे नहीं पता था... मुझे अहसास नहीं था..."

बुज़ुर्ग ने उसके सिर पर हाथ रखा। "बेटा, अहसास होना बहुत जरूरी है। अब जाग जा। अभी भी देर नहीं हुई है।"

9. बदलाव

उस दिन के बाद जगत सिंह बदल गया।

उसने लकड़ी का व्यापार छोड़ दिया। अब वह पेड़ नहीं काटता था, बल्कि पेड़ लगाता था।

हर साल बारिश के मौसम में वह गाँव वालों के साथ जंगल में जाता। हज़ारों पेड़ लगाता। देवदार, बुरांश, खरसू तरह-तरह के पौधे लगाता। उनकी देखभाल करता। पानी देता। उन्हें बड़ा होते देखता।

उसने गाँव के बच्चों को भी सिखाया "देखो बेटा, यह पेड़ हमारी साँस है। जब तक यह रहेगा, हम रहेंगे।"

धीरे-धीरे वह जगह फिर से हरी-भरी होने लगी। जहाँ कभी खाली ज़मीन थी, वहाँ अब छोटे-छोटे पेड़ उग आए थे। नदी के किनारे फिर से बुरांश खिलने लगे।

10. वह रात फिर

सालों बाद, एक रात जगत सिंह फिर उसी जगह गया। अब वह बूढ़ा हो चुका था।

वहाँ बैठा। नदी की आवाज़ सुनता रहा। आज नदी शांत थी, बहुत शांत। कल-कल, छल-छल ऐसा लगता था जैसे वह कोई पुरानी कहानी सुना रही हो।

तभी उसे लगा हवा में फिर वही आवाज़ आई, पर इस बार बहुत धीमी, बहुत मीठी

"धन्यवाद जगत... तूने पहाड़ को समझा।"

जगत सिंह की आँखों से आँसू बह निकले। उसने हाथ जोड़े। नदी को प्रणाम किया। फिर वहाँ से चला गया।

11. आज

आज भी खोह नदी बहती है।

दिन में उसका पानी धूप में चमकता है, और उसकी आवाज़ पहाड़ की कोई पुरानी धुन सुनाती रहती है। बच्चे किनारे बैठकर घंटों उसे सुनते हैं। बुज़ुर्ग कहते हैं यह नदी सिर्फ पानी नहीं बहाती, यह चेतावनी भी देती है।

और जो भी पहाड़ को काटने की सोचता है, उसे एक रात जरूर नदी की आवाज़ सुनाई देती है

"पहाड़ को मत काटो... वरना पहाड़ तुम्हें याद रखेगा।"

पर जो पहाड़ का सम्मान करता है, उसके लिए नदी की आवाज़ सबसे मीठी धुन होती है।

12. जगत सिंह की विरासत

जगत सिंह अब इस दुनिया में नहीं है। पर उसके लगाए हुए पेड़ आज बड़े हो गए हैं। उसने जो बीज बोया था, वह आज एक छोटा सा जंगल बन गया है।

लोग उसे 'जगत का जंगल' कहते हैं। और जब भी कोई वहाँ से गुज़रता है, तो ठिठककर खड़ा हो जाता है। हवा में एक अजीब-सी खुशबू होती है पेड़ों की, फूलों की, और कहीं नदी की भी।

बुज़ुर्ग कहते हैं "जगत सिंह ने एक बार गलती की थी, पर उसने सुधार भी कर लिया। यही सबसे बड़ी बात है। गलती से कोई नहीं डरता, डरना है तो उसे सुधारने से।"

13. उपसंहार

खोह नदी आज भी वैसी ही है। शांत, सुंदर, और गहरी।

पर उसकी शांति के अंदर एक चेतावनी छिपी है हर उस इंसान के लिए जो पहाड़ को चोट पहुँचाना चाहता है।

क्योंकि प्रकृति को चोट पहुँचाने वाला अंत में खुद ही घायल होता है। और जो प्रकृति का सम्मान करता है, वही सच में पहाड़ का सच्चा साथी होता है

14. संदेश

पहाड़ हमसे कुछ नहीं माँगते,

बस हमारा सम्मान चाहते हैं।

जंगल हमसे कुछ नहीं चाहते,

बस हमारा प्यार चाहते हैं।

नदियाँ हमसे कुछ नहीं लेतीं,

बस हमें जीवन देती हैं।

जो इसे समझ गया,

उसके लिए पहाड़ हमेशा हरे हैं।

और जो नहीं समझा,

उसे एक दिन खोह नदी की चेतावनी जरूर सुननी पड़ेगी।

अतुल नैथानी

पीपल का पेड़ – पहाड़ की साँस
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक प्रकृति प्रेम की लोककथा)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। दुगड्डा के आस-पास की पहाड़ी पृष्ठभूमि और लोककथाओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ का वो पीपल

दुगड्डा से थोड़ा ऊपर, जहाँ सड़क पहाड़ी से सटकर निकलती है, एक छोटा-सा गाँव था नाम था गोदी गाँव।

चारों तरफ देवदार के घने जंगल, सीढ़ीदार खेत, और बीच में बहती एक पतली-सी धारा जिसका पानी बर्फ की तरह ठंडा और शहद की तरह मीठा था।

गाँव के बीचों-बीच एक पुराना पीपल का पेड़ खड़ा था।

इतना पुराना कि गाँव के बुज़ुर्ग कहते थे "जब हमारे दादा के दादा छोटे थे, तब भी यह पेड़ यहीं था।" उसकी जड़ें ज़मीन में इतनी गहरी थीं कि लगता था जैसे पहाड़ की आत्मा से जुड़ी हों। उसकी डालियाँ इतनी फैली हुई थीं कि दोपहर में पूरा चौराहा उसकी छाया में डूबा रहता था।

उस पीपल के नीचे हमेशा ठंडी छाया रहती। गर्मी की दोपहर में किसान वहाँ बैठकर आराम करते। बच्चे उसकी जड़ों पर खेलते। यात्री उसके नीचे रुककर पानी पीते और फिर आगे बढ़ जाते।

पास ही वह छोटी-सी धारा बहती थी, जिसका पानी बहुत मीठा था। गाँव वाले मानते थे यह पीपल ही उस धारा की रक्षा करता है। उसकी जड़ें पानी को रोककर रखती हैं, मिट्टी को बाँधे रखती हैं, और पहाड़ को मज़बूती देती हैं।

2. पीपल की रात

पर इस पीपल के बारे में एक और बात थी, जो सिर्फ गाँव के बुज़ुर्ग जानते थे।

दादा गोपाल दा कहते थे "बेटा, यह पीपल सिर्फ पेड़ नहीं है। यह पहाड़ की साँस है। और रात को... रात को यह कुछ और हो जाता है।"

बच्चे पूछते "क्या होता है दादा ?"

गोपाल दा मुस्कुराते "रात को यह पीपल ऑक्सीजन देता है। दूसरे पेड़ रात को कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं, पर पीपल रात भर ऑक्सीजन देता रहता है। इसलिए पुराने लोग कहते थे रात को पीपल के नीचे मत सोना, वहाँ कोई और रहता है।"

"कौन दादा ?"

"पहाड़ की रक्षा करने वाली एक आत्मा। उसे लोग भूतनी कहते हैं, पर वह भूतनी नहीं है। वह तो इस पहाड़ की देवी है। वह रात को इस पीपल में आती है। उसकी जड़ों में बैठती है। और पूरे पहाड़ की रक्षा करती है।"

3. शहर से आए लोग

समय बदला। सड़क बनने लगी। बाज़ार बढ़ने लगा। गाँव के पास से एक नई सड़क गुज़री, और लोगों की नज़र उस पीपल पर पड़ी।

एक दिन शहर से कुछ लोग आए। बड़ी-बड़ी गाड़ियों में। सूट-बूट पहने। वे गाँव वालों से मिले और बोले

"यह पीपल का पेड़ बहुत बड़ा है। अगर इसे काट दिया जाए, तो यहाँ बड़ा होटल बन सकता है। सड़क के किनारे, ठंडी जगह, बहुत सैलानी आएँगे। गाँव में पैसे आएँगे। नौकरियाँ आएँगी।"

कुछ गाँव वाले लालच में आ गए। उन्होंने सोचा सच में, अगर होटल बन गया तो हमें भी फायदा होगा।

पर गाँव के बुज़ुर्ग चुप थे। दादा गोपाल दा उसी पीपल के नीचे बैठे थे। वह कुछ नहीं बोले, बस पेड़ के तने को सहलाते रहे।

4. गोपाल दा का जवाब

अगले दिन पंचायत बुलाई गई। शहर वाले फिर आए। नक्शे दिखाए। पैसों के आँकड़े दिखाए। कहा "देखो, यह पेड़ काटने से तुम्हें कितना फायदा होगा।"

सब चुप थे। तभी गोपाल दा उठे। धीरे-धीरे, लाठी के सहारे। वह पीपल के पास गए। उसे छुआ। फिर बोले

"तुम लोग होटल बना लोगे... बहुत बड़ा होटल बना लोगे। पर क्या इस पेड़ की छाया भी बना पाओगे ?"

शहर वाले हँसने लगे। "छाया ? छाया तो हम कूलर-एसी से बना लेंगे।"

गोपाल दा ने उनकी तरफ देखा। फिर धीरे से बोले

"और इसकी जड़ें ? जो पहाड़ को बाँधे रखती हैं ? और यह धारा ? जिसका पानी इतना मीठा है ? और यह हवा ? जो इतनी शुद्ध है ? और रात को मिलने वाली ऑक्सीजन ? और वो... वो जो इस पेड़ में रहती है ?"

शहर वाले समझ नहीं पाए। पर गाँव वालों के चेहरे पीले पड़ गए। वे जानते थे कि गोपाल दा किसके बारे में बात कर रहे थे।

5. लकड़हारों का आना

अगले दिन लकड़हारे कुल्हाड़ी लेकर आ गए। शहर वालों ने बहुत पैसे दिए थे। उन्हें कोई डर नहीं था।

भोर का समय था। सूरज अभी निकला ही था। लकड़हारों ने पीपल के पास जाकर कुल्हाड़ी उठाई।

पर जैसे ही पहली कुल्हाड़ी पेड़ के तने पर लगी

अचानक आसमान में काले बादल छा गए। दोपहर होते-होते ऐसा अंधेरा हो गया जैसे शाम हो गई हो। तेज़ हवा चलने लगी। इतनी तेज़ कि पेड़ झुक गए। धूल उड़ने लगी। बिजली कड़कने लगी।

और पीपल के पत्ते वे जोर-जोर से हिलने लगे। ऐसा लगा जैसे पेड़ खुद बोल रहा हो। उसकी हर पत्ती में एक आवाज़ थी, एक गर्जना थी।

लकड़हारे डर गए। उनके हाथ से कुल्हाड़ी गिर पड़ी।

तभी पास की धारा का पानी अचानक तेज़ हो गया। जैसे कोई उसे उफना रहा हो। पानी की लहरें ऊपर उठने लगीं।

6. वह दिखी

तभी अचानक हवा थम गई। सब कुछ शांत हो गया। बस पीपल के पत्ते हल्के-हल्के सरसरा रहे थे।

और फिर...

उस पीपल के तने से एक आकृति निकली। धुएँ की तरह, पर साफ। एक औरत का रूप। लंबे बाल, सफेद कपड़े, और आँखों में एक गहरी चमक। वह पीपल के तने से बाहर आई और सबके सामने खड़ी हो गई।

लकड़हारे चीखते हुए भाग गए। शहर वाले सहम गए। गाँव वाले घुटनों के बल बैठ गए।

वह बोली

"मैं इस पहाड़ की रक्षक हूँ। मैं इस पीपल में रहती हूँ। मैं हर उस पेड़ में रहती हूँ जिसे तुम लोग काटना चाहते हो। मैं हर उस धारा में रहती हूँ जिसे तुम सुखाना चाहते हो। मैं हर उस पहाड़ में रहती हूँ जिसे तुम तोड़ना चाहते हो।"

उसकी आवाज़ में करुणा थी, पर गर्जना भी।

"मुझे लोग भूतनी कहते हैं। पर मैं भूतनी नहीं हूँ। मैं इस पहाड़ की आत्मा हूँ। और मैं तुम सबको चेतावनी देती हूँ इस पीपल को मत काटो। नहीं तो यह पहाड़ खाली हो जाएगा। यह धारा सूख जाएगी। और तुम्हारे घर भी एक दिन खंडहर हो जाएँगे।"

7. वह रात

फिर वह गायब हो गई। उसी तरह धुएँ की तरह, पीपल के तने में समा गई

उस रात गाँव में कोई नहीं सोया। शहर वाले भी डरे हुए थे। वे सुबह की प्रतीक्षा कर रहे थे कि सुबह होते ही यहाँ से भाग जाएँ।

पर रात को कुछ और ही हुआ।

गोपाल दा उस पीपल के नीचे गए। वहाँ बैठ गए। आँखें बंद कर लीं। तभी उन्हें लगा, जैसे कोई उनके पास बैठ गया हो।

उन्होंने आँखें खोलीं। वही औरत पर अब उसके चेहरे पर गुस्सा नहीं, बस एक अपार शांति थी।

"तुम डरे नहीं मुझसे ?" उसने पूछा।

गोपाल दा ने कहा "मैं तुम्हें बचपन से जानता हूँ। मेरे दादा ने बताया था। तुम इस पीपल में रहती हो। तुम पहाड़ की रक्षा करती हो। मैं तुमसे डरता नहीं, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।"

उस औरत की आँखों से आँसू बहने लगे।

"धन्यवाद गोपाल। सौ सालों में तुम पहले इंसान हो जिसने मुझे पहचाना। बाकी तो मुझे देखते ही भाग जाते हैं, या मुझे भूतनी कहकर पत्थर मारते हैं

"तुम भूतनी नहीं हो। तुम तो इस पहाड़ की देवी हो।"

वह मुस्कुराई। फिर धीरे-धीरे बोली

"गोपाल, मैं तुम्हें एक रहस्य बताती हूँ। यह पीपल रात को ऑक्सीजन देता है। इसलिए मैं रात को यहाँ आती हूँ। मैं उस ऑक्सीजन को पूरे पहाड़ में फैला देती हूँ। इसी से यहाँ की हवा इतनी शुद्ध है, पानी इतना मीठा है, और जंगल इतने हरे हैं।"

"पर लोग तो कहते हैं रात को पीपल के नीचे नहीं सोना चाहिए ?"

"सही कहते हैं। क्योंकि रात को यहाँ मैं होती हूँ। और मैं उन लोगों को परखती हूँ जो यहाँ आते हैं। जो सच्चे होते हैं, उन्हें मेरी उपस्थिति में शांति मिलती है। जो झूठे होते हैं, वे डर जाते हैं।"

8. गाँव वालों का फैसला

सुबह हुई। शहर वाले भाग गए। लकड़हारों ने कसम खाई कि अब कभी पेड़ नहीं काटेंगे।

गाँव में पंचायत बुलाई गई। गोपाल दा ने सबको वह रात की बात बताई। सब चुपचाप सुनते रहे।

फिर गोपाल दा ने कहा

"देखो, हमने आज उस आत्मा को देखा जो हमारे पहाड़ की रक्षा करती है पर क्या हमें उसे देखने के लिए कोई संकट आने का इंतज़ार करना चाहिए क्या हम रोज़ उसका अपमान नहीं करते ?

जब हम पेड़ काटते हैं, तो उसका घर तोड़ते हैं। जब हम पानी गंदा करते हैं, तो उसका आईना तोड़ते हैं। जब हम पहाड़ों पर पत्थर तोड़ते हैं, तो उसकी हड्डियाँ तोड़ते हैं।"

गाँव वालों की आँखें खुल गईं।

उस दिन पंचायत ने फैसला किया

पीपल का पेड़ नहीं कटेगा। उसकी रक्षा की जाएगी। और गाँव में हर साल नए पेड़ लगाए जाएँगे। कोई भी पेड़ बिना सोचे-समझे नहीं काटा जाएगा।

9. आज

आज भी उस गाँव में वह पीपल खड़ा है। उसकी छाया में बच्चे खेलते हैं, यात्री आराम करते हैं, और बुज़ुर्ग बैठकर बातें करते हैं।

पास की धारा का पानी अब भी मीठा बहता है। और रात को, जब पूरा गाँव सो जाता है, उस पीपल के नीचे एक हल्की-सी रोशनी दिखाई देती है

गाँव वाले कहते हैं वह वही है। पहाड़ की रक्षक। वह रात भर जागती है। पेड़ों से ऑक्सीजन लेती है और पूरे पहाड़ में फैला देती है। वह धारा की रखवाली करती है। वह जंगलों की देखभाल करती है।

कभी-कभी कोई बच्चा रात को जाग जाता है और उसे देख लेता है। वह डरता नहीं, बस देखता रह जाता है। सुबह वह अपनी माँ से कहता है "माँ, आज रात मैंने परी देखी।"

माँ मुस्कुरा देती है। वह जानती है कि बच्चे ने किसे देखा।

10. गोपाल दा का अंत

गोपाल दा अब इस दुनिया में नहीं हैं। पर उनकी कहानी आज भी ज़िंदा है

उनके अंतिम दिनों में, जब वह बहुत बीमार थे, तो वह रोज़ उस पीपल के नीचे जाते थे। वहाँ बैठते थे। घंटों बैठते थे।

एक दिन उन्होंने अपने बेटे से कहा "बेटा, जब मैं मर जाऊँ, तो मुझे इसी पीपल के नीचे दफना देना।"

बेटा चौंका "पर बाबा, हम तो हिंदू हैं, हम दफनाते नहीं।"

गोपाल दा मुस्कुराए "बेटा, मुझे पता है। पर मैं चाहता हूँ कि मेरी हड्डियाँ इस पीपल की जड़ों में मिल जाएँ। तब मैं भी इस पहाड़ की रक्षा कर सकूँगा उस आत्मा के साथ।"

गोपाल दा गए तो उनके बेटे ने उनकी इच्छा पूरी नहीं की। पर हर साल उनकी याद में वह पौधा लगाता है।

आज वहाँ छोटा-सा जंगल हो गया है। गोपाल दा का जंगल।

11. उस आत्मा का संदेश

एक रात वह आत्मा फिर दिखी। इस बार गाँव के एक युवक को।

उसने कहा "जाओ, गाँव वालों से कहो पहाड़ को बचाना है तो पेड़ों को बचाओ। पानी को बचाओ। प्रकृति को माँ की तरह सम्मान दो। मैं यहाँ हूँ, तुम्हारी रक्षा के लिए। पर मैं अकेली क्या कर सकती हूँ? तुम्हें भी आगे आना होगा।"

उस युवक ने यह बात पूरे गाँव में फैला दी। आज वह युवक गाँव का मुखिया है। वह हर साल पेड़ लगवाता है। जंगलों की रक्षा करता है। नदियों को साफ रखता है।

12. उपसंहार

आज भी उस गाँव में वह पीपल खड़ा है। उसकी छाया में बच्चे खेलते हैं, यात्री आराम करते हैं, और बुज़ुर्ग बैठकर कहानियाँ सुनाते हैं।

रात को, जब पूरा गाँव सो जाता है, वह आत्मा आती है। पीपल के तने से निकलती है। चारों तरफ घूमती है। पेड़ों को छूती है। धारा को देखती है। और आक्सीजन की लहरें पूरे पहाड़ में फैला देती है।

गाँव वाले कहते हैं

"जहाँ पेड़ खड़े रहते हैं, वहीं पहाड़ जिंदा रहते हैं।

और जहाँ पहाड़ जिंदा हैं, वहाँ वह आत्मा रहती है

रात की रानी, पीपल की रखवालिन, पहाड़ की साँस।"

13. संदेश

पेड़ सिर्फ लकड़ी नहीं हैं।

वे हमारे पूर्वज हैं, हमारे रक्षक हैं, हमारी साँस हैं।

वे रात को ऑक्सीजन देते हैं, दिन को छाया देते हैं,

हर पल जीवन देते हैं।

जो पेड़ काटता है, वह अपना भविष्य काटता है।

जो पेड़ लगाता है, वह पहाड़ को अमर करता है।

और जो पेड़ों की रक्षा करता है,

उसकी रक्षा खुद पहाड़ की आत्मा करती है।

अतुल नैथानी

गढ़वाली शादी – एक प्रेरणा
(पहाड़ों से एक सामाजिक लोककथा)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। गढ़वाल की पहाड़ी पृष्ठभूमि और वहाँ की परंपराओं से प्रेरित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ का वो गाँव

दुगड्डा के पास, जहाँ पहाड़ियाँ एक-दूसरे से लिपटी हुई हैं और देवदार के पेड़ आसमान को छूने की कोशिश कर रहे हैं, वहाँ एक छोटा-सा गाँव था नाम था ल्वाणी गाँव।

चारों तरफ देवदार के घने जंगल, सीढ़ीदार खेत जो पहाड़ियों की गोद में बने थे, और बीच-बीच में पत्थरों और मिट्टी से बने छोटे-छोटे घर। हर घर में एक आँगन, हर आँगन में तुलसी का पौधा, और हर दरवाज़े पर एक कहानी

गाँव में करीब सौ घर थे। लोग बहुत सादगी से रहते थे सुबह खेतों में काम, शाम को घर लौटना, और बीच-बीच में ढोल-दमाऊँ की थाप पर थिरकना यही उनकी ज़िन्दगी थी।

पर इस गाँव में एक चीज़ और थी एक पुरानी परंपरा, जो पीढ़ियों से चली आ रही थी। वह परंपरा थी दहेज।

2. कमला

उसी गाँव में कमला नाम की एक लड़की रहती थी।

कमला बहुत साधारण-सी लड़की थी। काले-साँवले रंग की, पतली-दुबली, पर आँखों में एक अजीब-सी चमक। वह हमेशा कुछ न कुछ सोचती रहती। जब दूसरी लड़कियाँ खेलतीं, वह किताबों में खोई रहती।

उसके पिता का नाम था दीवान सिंह। गरीब किसान थे। खेत में दिन-रात मेहनत करते, पर गुज़ारा मुश्किल से होता। माँ का नाम था गंगा देवी एक साधारण पहाड़ी महिला, जो अपनी बेटी के सपनों को समझती थी, पर सामने कुछ नहीं कह सकती थी।

कमला ने दसवीं तक पढ़ाई की थी गाँव से दस किलोमीटर दूर शहर जाकर वह आगे पढ़ना चाहती थी, पर पिता ने कहा "बेटी, अब बहुत हो गया। अब तो शादी करनी है।"

कमला चुप हो गई। उसे पता था पहाड़ों में लड़कियों की यही नियति है। पढ़-लिखकर भी आखिर चूल्हे तक आना होता है।

3. शादी तय होना

एक दिन गाँव के एक रिश्तेदार ने बात चलाई। दूसरे गाँव में एक लड़का था दीपक। अच्छा लड़का था, पढ़ा-लिखा, नौकरी करता था शहर में। उसके घर वाले शादी के लिए राजी हो गए।

कमला के पिता को बहुत खुशी हुई। पर उस खुशी के साथ एक डर भी था दहेज का।

उसने सोचा "कितना माँगेंगे ? कहीं ज़मीन न माँग लें ? कहीं गहने न माँग लें ? हम तो मुश्किल से दो वक्त की रोटी जुटा पाते हैं।"

उसने दीवान सिंह को बहुत समझाया "पिता जी, चिंता मत कीजिए। जो होगा देखा जाएगा।"

पर पिता की चिंता कम नहीं हुई। वह रात-रात भर जागते, सोचते कहाँ से लाएंगे इतने पैसे ?

4. गाँव में बात फैलना

शादी से कुछ दिन पहले दीवान सिंह ने सोचा क्यों न एक बार लड़के वालों से साफ-साफ बात कर ली जाए ?

वह उनके पास गए। बड़ी मुश्किल से बोले

"देखिए, हमारी हैसियत ज्यादा नहीं है। हम बेटी को बहुत कुछ नहीं दे सकते। पर हमने उसे अच्छे संस्कार दिए हैं। उसे प्यार से रखिएगा, यही हमारी माँग है।"

लड़के वालों ने कोई जवाब नहीं दिया। बस मुस्कुराकर रह गए।

पर यह बात गाँव में फैल गई। लोग तरह-तरह की बातें करने लगे

"देखो, दीवान सिंह ने पहले ही कह दिया हमारे पास कुछ नहीं है।"

"अरे, दहेज तो देना ही पड़ता है। बिना दहेज के शादी कहाँ होती है ?"

"पता है, उनके पास बहुत ज़मीन नहीं है। मुश्किल होगी।"

कमला यह सब सुनती थी। उसका दिल टूटता था। पर वह कुछ नहीं कर सकती थी। बस चुप रहती थी। माँ से लिपटकर रो लेती थी।

5. शादी का दिन

शादी का दिन आ गया।

पूरे गाँव में मेले जैसा माहौल था। घरों पर झंडे लगे थे। औरतें मांगल गीत गा रही थीं वही पुराने गढ़वाली गीत, जो सदियों से गाए जा रहे थे। बच्चे इधर-उधर भाग रहे थे। बुज़ुर्ग चौपाल में बैठकर हुक्का पी रहे थे।

दोपहर तक बारात आ गई। पहाड़ी पगडंडी से होते हुए, ढोल-दमाऊँ की थाप पर, बाराती नाचते-गाते गाँव पहुँचे। लाल पगड़ी, चमकते कपड़े, और चेहरों पर खुशी।

दूल्हा दीपक घोड़ी पर सवार था। उसके चेहरे पर एक अजीब-सी गंभीरता थी। वह इधर-उधर देख रहा था, जैसे कुछ ढूँढ रहा हो।

कमला के घर में रौनक थी। कमला को लाल चुनरी ओढ़ाई गई थी। माँ उसके बालों में तेल डाल रही थीं और रो रही थीं।

"बेटी, अब तू पराये घर जाएगी। अपना ख्याल रखना। सास-ससुर की सेवा करना। पति का मान रखना।"

कमला चुपचाप सुनती रही। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। पर उन आँसुओं में खुशी भी थी, दुख भी, डर भी।

6. वो पल

वरमाला का समय आया। दीपक कमला के सामने खड़ा था। फूलों की माला उसके हाथ में थी।

तभी अचानक दीपक ने सबके सामने हाथ उठाया। ढोल-दमाऊँ बंद हो गए सब लोग चुप हो गए।

दीपक ने कहा "आज मैं एक बात कहना चाहता हूँ।"

सन्नाटा छा गया। किसी की साँस नहीं चल रही थी।

दीपक ने कमला के पिता की ओर देखा। फिर सब लोगों की ओर। फिर धीरे-धीरे बोला

"मैं दहेज नहीं लूँगा। न मुझे पैसे चाहिए, न गहने, न ज़मीन, न गाड़ी। मैं सिर्फ कमला को लेने आया हूँ। उसे और कुछ नहीं चाहिए।"

लोगों के बीच सरगोशी शुरू हो गई। कुछ लोग हैरान थे, कुछ खुश, कुछ को यकीन नहीं हो रहा था।

दीपक ने आगे कहा "पर अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं, तो एक वचन दीजिए।"

दीवान सिंह के हाथ काँप रहे थे। "बोलो बेटा, क्या वचन ?"

दीपक ने कहा "यह वचन दीजिए कि अपने गाँव की हर बेटी को पढ़ने का अवसर देंगे। जितनी पढ़ना चाहे, उतना पढ़ने देंगे। उन्हें डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षिका बनने से नहीं रोकेंगे। यही मेरा दहेज है। यही मेरी माँग है।"

7. वह सन्नाटा

पूरा आँगन शांत हो गया।

कुछ पल के लिए ऐसा लगा जैसे समय थम गया हो। कोई कुछ नहीं बोल रहा था। बस हवा में पत्तों की सरसराहट थी और दूर कहीं पक्षियों की आवाज़।

फिर गाँव की एक बूढ़ी औरत जिसकी उम्र अस्सी साल थी वह उठी। उसके हाथ काँप रहे थे, पर आँखों में चमक थी।

वह बोली "बेटा, तूने आज हम सबको शर्मिंदा कर दिया। हम सालों से दहेज की आग में जल रहे थे। हमने अपनी बेटियाँ बेचीं, ज़मीनें बेचीं, कर्ज़ लिया, पर तूने आज सबको सिखा दिया।"

उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। "मेरी भी एक बेटी थी। मैं उसे पढ़ा नहीं पाई। दहेज नहीं जुटा पाई तो उसकी शादी नहीं हो पाई। वह आज भी अकेली है। काश! आज तू उस वक्त होता।"

धीरे-धीरे औरतों की आँखों में आँसू आ गए। फिर वे आँसू खुशी के थे। किसी ने ताली बजाई, तो किसी ने जयकारा लगाया। फिर तो पूरा आँगन दीपक के नाम से गूँज उठा।

8. कमला के पिता का वचन

दीवान सिंह के हाथ काँप रहे थे। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। वह दीपक के पास गए। उसे गले लगा लिया।

"बेटा, तूने आज मेरी इज्ज़त बचा ली। मैं रात-रात भर जागता था सोच-सोच कर कि कहाँ से लाऊँगा दहेज। तूने आज मुझे जीना सिखा दिया।"

फिर उन्होंने सब लोगों की ओर देखा। उन्होंने हाथ उठाया और कहा

"मैं वचन देता हूँ। आज से इस गाँव की हर बेटी पढ़ेगी। जितना पढ़ना चाहेगी, उतना पढ़ेगी। मैं अपनी बेटी कमला को भी आगे पढ़ाऊँगा। अब कोई बेटी बिना पढ़े नहीं रहेगी।"

सब लोगों ने तालियाँ बजाईं। ढोल-दमाऊँ फिर से बजने लगे। माहौल खुशी से भर गया।

9. कमला की नई शुरुआत

कमला ने यह सब देखा। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे पर यह आँसू खुशी के थे।

वह दीपक के पास गई। धीरे से बोली "आपने आज मेरा जीवन बदल दिया।"

दीपक मुस्कुराया। "नहीं कमला, तुमने मेरा जीवन बदल दिया। मैं तुमसे शादी कर के आ रहा हूँ, पर मुझे पता है तुम बहुत पढ़ी-लिखी हो। तुम आगे पढ़ना चाहती थीं। मैं वह मौका दूँगा तुम्हें।"

कमला चौंक गई। "क्या ?"

"हाँ। शादी के बाद तुम आगे पढ़ोगी। मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा। तुम डॉक्टर बनोगी, या जो बनना चाहो। मुझे दहेज में पैसे नहीं चाहिए, मुझे दहेज में तुम्हारे सपने चाहिए।"

कमला उस दिन पहली बार खुलकर हँसी। वह हँसी देखने लायक थी।

10. नई परंपरा

उस शादी के बाद गाँव में बहुत बदलाव आया।

लोगों ने दहेज लेना-देना कम कर दिया। अब शादियों में पूछा जाने लगा लड़की कितनी पढ़ी है ? उसके सपने क्या हैं ? वह क्या बनना चाहती है ?

धीरे-धीरे गाँव की हर बेटी स्कूल जाने लगी। पहले तो कुछ लोग हिचकिचाए, पर फिर सबने देखा बेटियाँ पढ़ रही हैं, सीख रही हैं, और गाँव बदल रहा है।

दीपक और कमला शहर चले गए। कमला ने आगे पढ़ाई की। वह डाक्टर बनी फिर दोनों गाँव लौट आए। उन्होंने गाँव में एक छोटा-सा अस्पताल

खोला। गरीबों का मुफ्त इलाज करते। कमला औरतों की सेवा करती, उन्हें जागरूक करती।

11. आज

आज भी उस गाँव में जब कोई गढ़वाली शादी होती है, तो एक रस्म जरूर निभाई जाती है।

वरमाला से पहले दूल्हा और दुल्हन के बीच एक संवाद होता है। दूल्हा पूछता है "क्या तुम पढ़ोगी ? क्या तुम अपने सपने पूरे करोगी ?"

दुल्हन जवाब देती है "हाँ, मैं पढ़ूँगी। मैं अपने सपने पूरे करूँगी। और मैं इस गाँव की हर बेटी को पढ़ाऊँगी।"

फिर ढोल-दमाऊँ बजते हैं और सब नाचते हैं। लोग कहते हैं "यह दीपक और कमला की परंपरा है। यह नई गढ़वाली शादी है।"

12. उपसंहार

दीपक और कमला आज भी उसी गाँव में रहते हैं। वह छोटा-सा अस्पताल आज बड़ा हो गया है। कमला अब बुढ़ी हो चुकी है उनका बेटा डाक्टर है दीपक अब भी उसी प्यार से उसे देखता है, जैसे उस दिन शादी में देखा था

गाँव की हर बेटी आज स्कूल जाती है। कुछ डॉक्टर बनीं, कुछ इंजीनियर, कुछ शिक्षिका। पर हर एक के दिल में कमला और दीपक के लिए बे इंतहा इज़्ज़त है।

क्योंकि उन्होंने सिर्फ एक शादी नहीं की उन्होंने एक क्रांति की शुरुआत की उन्होंने दिखा दिया कि शादी सिर्फ दो लोगों का मिलन नहीं होती, वह समाज को बदलने का अवसर भी हो सकती है।

13. संदेश

दहेज वो जंजीर है जो बेटियों को उनके हक से बाँधती है।

पर जब एक लड़का कहता है "मुझे दहेज नहीं चाहिए,

मुझे बस तुम्हारे सपने चाहिए, “तो वह सिर्फ एक शादी नहीं रचाता,

वह एक नया इतिहास लिखता है।

गढ़वाल की उस शादी ने यही सिखाया शादी सिर्फ दो लोगों का मिलन नहीं, समाज को बदलने का अवसर भी हो सकती है।

और जब ढोल-दमाऊँ बजते हैं, तो वह सिर्फ खुशी की आवाज़ नहीं होती, वह एक नई सोच की शुरुआत होती है सम्मान, शिक्षा और बराबरी की।

अतुल नैथानी

फौजी का परिवार – साहस और त्याग
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक त्याग और गर्व की कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। गढ़वाल के पहाड़ों में बसे एक सैनिक परिवार की भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ का वो गाँव

गढ़वाल के पहाड़ों में, दुगड्डा से थोड़ा ऊपर एक छोटा-सा गाँव था नाम था भैंसारी गाँव।

चारों तरफ देवदार के ऊँचे-ऊँचे पेड़, सीढ़ीदार खेत जो पहाड़ियों की गोद में बसे थे, और दूर कहीं बहती खोह नदी की मधुर आवाज़ कल-कल, छल-छल। सुबह होते ही पक्षियों का संगीत शुरू हो जाता, और शाम ढलते ही घरों में दीप जलने लगते।

उसी गाँव के एक कोने में, पत्थर और मिट्टी से बना एक छोटा-सा घर था। उस घर में रहती थीं एक बूढ़ी माँ, उसकी बहू, और उसका छोटा बेटा।

उस घर की एक खास बात थी उसके आँगन में हमेशा एक तिरंगा लहराता था। क्योंकि उस घर का बेटा वीर सिंह फौज में था।

2. वीर सिंह

वीर सिंह गाँव का गौरव था।

वह भारतीय सेना में जवान था और देश की सीमा पर तैनात रहता था। कहीं बर्फीली चोटियों पर, कहीं दूर रेगिस्तान में, कहीं बार्डर पर दुश्मनों से लोहा लेते हुए। साल में बस एक-दो बार ही वह घर आ पाता था। जब भी उसकी छुट्टी होती, पूरा गाँव उसे देखने उमड़ पड़ता।

बच्चे उसे घेर लेते "वीर चाचा, बंदूक दिखाओ। वर्दी पहनकर आना।"

बुज़ुर्ग उसे आशीर्वाद देते "बेटा, तू हमारे गाँव का नाम रोशन कर रहा है।"

औरतें गर्व से कहतीं "हमारे गाँव का फौजी आ गया।"

पर उस गर्व के पीछे एक परिवार था, जो साल के ३६५ दिन सिर्फ इंतज़ार करता था। उसकी माँ, उसकी पत्नी, और उसका छोटा बेटा।

3. माँ का इंतज़ार

वीर सिंह की माँ बूढ़ी, कमज़ोर, पर आँखों में असीम धैर्य। उनका नाम था चंदा देवी। रोज़ सुबह उठकर वह गाँव के मंदिर में जातीं। एक छोटा-सा दीप जलातीं। फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करतीं

"हे भगवान, मेरे बेटे को सुरक्षित रखना। वह दूर सीमा पर है, ठंड में, बर्फ में, गोलियों के बीच। उसकी रक्षा करना। उसे जल्दी घर भेजना।"

घर लौटकर वह आँगन में बैठ जातीं। उसी कुर्सी पर, जहाँ वीर बैठता था जब घर आता था। दूर पहाड़ों को देखती रहतीं। कभी-कभी आँखों से आँसू बहने लगते।

पड़ोस की औरतें कहतीं "चंदा दीदी, रोती क्यों हो ? तुम्हारा बेटा तो बहुत बड़ा आदमी है।"

चंदा देवी मुस्कुरा देतीं "बहुत बड़ा आदमी है बेटा। पर वह मेरा बेटा भी है माँ हूँ न, मन तो करता है कि सामने बैठा हो, रोटी खिलाऊँ, बातें करूँ।"

4. सीमा का संघर्ष

वीर सिंह की पत्नी सीमा एक साधारण पहाड़ी महिला, पर असीम साहस वाली।

उसकी ज़िन्दगी आसान नहीं थी। सुबह उठकर खेतों में काम करना, घर का सारा काम संभालना, बेटे को पढ़ाना, सास की सेवा करना सब कुछ अकेले पर कभी शिकायत नहीं करती थी।

बस एक वक्त होता था, जब वह कमज़ोर हो जाती थी रात के वक्त।

जब पूरा गाँव सो जाता, खोह नदी की आवाज़ के सिवा कोई शोर नहीं होता, तब वह आँगन में निकल आती। आसमान की तरफ देखती। तारों को गिनती। सोचती

"पता नहीं इस समय वीर कहाँ होगा... बर्फ में खड़ा होगा ? किसी पहाड़ी चौकी पर पहरा दे रहा होगा ? खाना मिला होगा उसे ? ठंड से कैसे बच रहा होगा ?"

कई बार आँखों से आँसू बहने लगते। पर वह जल्दी पोंछ लेती। क्योंकि उसे पता था एक फौजी की पत्नी को हमेशा मज़बूत रहना होता है।

5. अंकित का सपना

छोटा अंकित वीर सिंह और सीमा का इकलौता बेटा। उम्र थी सात साल।

उसे अपने पापा पर बहुत गर्व था। जब भी स्कूल जाता, दोस्तों से कहता "मेरे पापा फौजी हैं। वह बॉर्डर पर दुश्मनों से लड़ते हैं।"

दोस्त पूछते "तुम्हारे पापा कब आएँगे ?"

अंकित कहता "जब भी आते हैं, लड्डू लाते हैं। और वर्दी पहनकर आते हैं बहुत सुंदर लगते हैं।"

पर रात को वह अपनी माँ से पूछता "माँ, पापा को कितनी ठंड लगती होगी वहाँ बर्फ़ पड़ती है न ?"

सीमा उसे गले लगा लेती "हाँ बेटा, पर पापा बहादुर हैं। उन्हें ठंड नहीं लगती।"

अंकित कहता "माँ, मैं भी बड़ा होकर पापा की तरह फौजी बनूँगा। वर्दी पहनूँगा। बंदूक चलाऊँगा। देश की रक्षा करूँगा।"

सीमा के चेहरे पर मुस्कान आ जाती "हाँ बेटा, जरूर बनना। पर उसके लिए पढ़ाई करनी होगी, मेहनत करनी होगी।"

अंकित चुप नहीं होता "मैं खूब मेहनत करूँगा माँ। तुम देखना।"

6. वह खबर

वह दिन था जनवरी की कड़कड़ाती ठंड। पूरे गाँव में बर्फ गिरी थी। पेड़ बर्फ से लद गए थे। रास्ते बंद हो गए थे।

तभी गाँव में खबर आई रेडियो पर। सीमा पर भारी गोलीबारी हुई है। जहाँ वीर सिंह की चौकी है, वहाँ बर्फ़ीले तूफ़ान के बीच दुश्मनों से मुठभेड़ हुई। कई जवान घायल हुए हैं।

खबर सुनते ही सीमा के पैरों तले ज़मीन खिसक गई। उसके हाथ-पैर ठंडे पड़ गए।

चंदा देवी मंदिर की तरफ भागीं। वहाँ जाकर गिर पड़ीं। रोते हुए प्रार्थना करने लगीं

"हे भगवान, मेरे बेटे को बचा लो। मैं उसके बिना नहीं रह सकती। तेरे चरणों में अर्जी है मेरे वीर को सुरक्षित रखो।"

सीमा घर में बैठी रही। उससे कुछ होता नहीं था। बस आँखों से आँसू बह रहे थे। अंकित उसके पास आकर बैठ गया। उसने माँ का हाथ पकड़ लिया

"माँ, डरो मत। पापा आएँगे। वह बहुत बहादुर हैं।"

सीमा ने बेटे को गले से लगा लिया। दोनों रोते रहे। बाहर बर्फ गिर रही थी, और घर में सन्नाटा था।

7. दो दिन का इंतज़ार

दो दिन, अड़तालीस घंटे जैसे दो युग बीत गए।

गाँव में कोई खबर नहीं थी। रेडियो बस यह बता रहा था कि गोलीबारी जारी है, कई जवान शहीद हुए हैं, कई घायल हैं।

चंदा देवी ने दो दिन में अन्न-जल त्याग दिया था। वह मंदिर में ही पड़ी रहीं सीमा ने घर का दरवाज़ा नहीं खोला। अंकित भी चुप था पहली बार उसने अपनी माँ को इतना टूटते देखा था।

दूसरे दिन रात को तेज़ आँधी आई। बर्फ़ और तेज़ हो गई। लगता था जैसे पूरा पहाड़ हिल रहा हो।

सीमा ने आँगन में आकर आसमान की तरफ देखा। वह चिल्लाई "हे भगवान, बस अब और नहीं सहा जाता। मेरे वीर को लौटा दो। मैं उसके बिना नहीं रह सकती।"

उसकी आवाज़ हवा में घुल गई।

8. डाकिया की चिट्ठी

तीसरे दिन सुबह बर्फ थमी थी, हवा भी शांत थी। सूरज निकल आया था।

तभी गाँव के डाकिया बुज़ुर्ग दादा भगत राम लाठी टेकते हुए उनके घर आए उनके हाथ में एक पीला लिफाफा था।

सीमा ने देखा पते की जगह लिखा था **"वीर चक्र विजेता वीर सिंह के परिवार के नाम"**।

सीमा के हाथ काँप रहे थे। उसने लिफाफा खोला। अंदर से एक चिट्ठी निकली वीर सिंह की हैंड राइटिंग में।

सीमा ने पढ़ना शुरू किया

"माँ, प्रणाम

चिंता मत करना। मैं ठीक हूँ। यहाँ ठंड बहुत है, बर्फ बहुत है, पर दिल गर्म है, क्योंकि पता है कि हम देश की रक्षा कर रहे हैं।

माँ, तुम रोज़ मेरे लिए दीप जलाती हो, है न ? वह दीप यहाँ तक पहुँचता है उसी की रोशनी में मैं दुश्मनों को देख पाता हूँ।

सीमा, तुम भी डटी रहो। मुझे पता है तुम्हारे लिए मुश्किल होता होगा। पर तुम बहादुर हो। तुम एक फौजी की पत्नी हो। और मेरे प्यारे अंकित सुन बेटा, खूब पढ़ना। बड़ा होकर फौजी बनना। पर पहले इंसान बनना। माँ-दादी का ख्याल रखना।

मैं यहाँ इसलिए खड़ा हूँ, ताकि तुम सब सुरक्षित रहो। यही मेरी ताकत है। यही मेरा गर्व है।

जल्दी मिलूँगा तुम सबसे।

तुम्हारा अपना,

वीर"

9. आँसू और गर्व

चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते सीमा की आँखों से आँसू बहने लगे। पर इस बार यह आँसू दुख के नहीं थे गर्व के थे।

उसने चिट्ठी अपनी सास को दी। चंदा देवी ने पढ़ी। उनकी आँखों से भी आँसू बहने लगे। पर उनके चेहरे पर मुस्कान थी।

"बेटा ज़िन्दा है। मेरा वीर ज़िन्दा है।"

उन्होंने चिट्ठी अपने सीने से लगा ली। फिर मंदिर की तरफ भागीं। वहाँ जाकर भगवान को धन्यवाद दिया।

अंकित ने चिट्ठी पढ़ी। फिर बोला "माँ, मैं पापा को चिट्ठी लिखूँगा। लिखूँगा कि मैं रोज़ पढ़ता हूँ। और बड़ा होकर फौजी बनूँगा।"

सीमा ने बेटे को गले लगा लिया। फिर तीनों ने मिलकर आँगन में तिरंगा फहराया। धूप में वह तिरंगा लहरा रहा था ठीक वैसे ही जैसे वीर सिंह सीमा पर लहरा रहा था।

10. उस शाम

उस शाम गाँव वाले उनके घर इकट्ठा हुए। सबने चिट्ठी सुनी। सबकी आँखें नम थीं।

दादा भगत राम बोले "वीर सिंह ने सच कहा है। सीमा पर सिर्फ एक जवान नहीं लड़ता, उसके पीछे उसका पूरा परिवार लड़ता है। माँ की प्रार्थना, पत्नी का धैर्य, बेटे का सपना यह सब उसकी ढाल हैं।"

चंदा देवी ने सबको प्रसाद बाँटा। सीमा ने मिठाई बनाई। अंकित ने अपने दोस्तों को बुलाया। उस शाम उस घर में खुशियाँ लौट आईं।

11. आज

आज वीर सिंह सेना में हैं। कई साल बीत गए। वह अब हवलदार हैं। कई बार घायल हुए, कई बार मौत के मुँह से वापस लौटे।

चंदा देवी अब इस दुनिया में नहीं हैं। पर जाते-जाते उन्होंने अंकित को आशीर्वाद दिया था "बेटा, तू भी फौजी बन। पर अपनी माँ का ख्याल रखना।"

सीमा अब भी उसी घर में रहती है। अब वह अकेली नहीं है उसके बेटे अंकित ने फौज जॉइन कर ली है। वह अब ट्रेनिंग में है। जल्द ही वह भी वर्दी पहनकर सीमा पर जाएगा।

अंकित ने अपनी माँ से कहा "माँ, अब मेरी बारी है। पापा ने देश की सेवा की, अब मैं करूँगा। तुम चिंता मत करना। मैं भी चिट्ठी लिखूँगा।"

सीमा मुस्कुराती है। उसकी आँखों में आँसू हैं, पर चेहरे पर गर्व है।

12. आज भी जलता है दीप

आज भी उस घर में रोज़ शाम को एक दीप जलता है। चंदा देवी की याद में। वीर सिंह की सलामती के लिए। अंकित की कामयाबी के लिए।

और उस दीप की रोशनी में पूरा गाँव देखता है कैसे एक फौजी का परिवार हर दिन एक युद्ध लड़ता है। अदृश्य युद्ध। इंतज़ार का, त्याग का, धैर्य का

पर वह युद्ध वे हँसकर लड़ते हैं। क्योंकि उन्हें पता है उनका बेटा, उनका पति, उनका पिता देश की रक्षा कर रहा है। और उसी रक्षा के बल पर यह घर, यह गाँव, यह पहाड़ सुरक्षित है।

13. उपसंहार

गढ़वाल के पहाड़ों में ऐसे कितने ही घर हैं। जहाँ एक बूढ़ी माँ रोज़ दीप जलाती है। जहाँ एक पत्नी रात को आसमान में तारे गिनती है। जहाँ एक बेटा बड़ा होकर फौजी बनने का सपना देखता है।

वे कभी नहीं रोते। कभी नहीं टूटते। क्योंकि उनके सीने में एक अलग ही गर्मी होती है गर्व की, देशभक्ति की, त्याग की।

और जब कभी उनका फौजी घर लौटता है, तो पूरा गाँव झूम उठता है। ढोल बजते हैं। औरतें मांगल गीत गाती हैं। पर उस खुशी के पीछे कितने दिनों का इंतज़ार, कितनी रातों का जागना, कितने आँसू छिपे होते हैं यह सिर्फ वही जानते हैं।

14. संदेश

सीमा पर खड़ा सैनिक अकेला नहीं होता। उसके पीछे उसका पूरा परिवार भी उतना ही साहस और त्याग लेकर खड़ा होता है।

माँ की प्रार्थना, पत्नी का धैर्य, बेटे का सपना यह सब उसकी असली ताकत होते हैं। फौजी का परिवार भी एक फौजी होता है।

वह घर पर लड़ता है इंतज़ार से, अकेलेपन से, मुश्किलों से। और उसी त्याग से देश की रक्षा होती है।

अतुल नैथानी

वीर वधु – एक फौजी की विधवा
(गढ़वाल के पहाड़ों से एक प्रेम और बलिदान की कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। गढ़वाल के पहाड़ों में बसे एक सैनिक परिवार की भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ का वो गाँव

गढ़वाल के पहाड़ों में, दुगड्डा से थोड़ा ऊपर एक छोटा-सा गाँव था नाम था सिमलगाँव।

चारों तरफ देवदार के ऊँचे-ऊँचे पेड़, जो हवा में झूमते रहते थे जैसे कोई पुराना गीत गुनगुना रहे हों। सीढ़ीदार खेत जो पहाड़ियों की गोद में बसे थे कभी सरसों के फूलों से पीले, कभी धान की फसल से हरे। और दूर कहीं बहती खोह नदी की मधुर आवाज़ कल-कल, छल-छल जैसे कोई प्रेम कहानी सुना रही हो।

सुबह होते ही पक्षियों का संगीत शुरू हो जाता। सूरज की पहली किरण देवदारों की चोटियों को छूती और धीरे-धीरे नीचे उतरती, जैसे कोई माँ अपने बच्चे को प्यार से जगा रही हो। शाम ढलते ही घरों में दीप जलने लगते, और हवा में बुरांश के फूलों की खुशबू घुल जाती।

उसी गाँव के एक कोने में, पत्थर और मिट्टी से बना एक छोटा-सा घर था। उस घर में रहते थे बुज़ुर्ग माँ-बाप, और उनका बेटा।

2. नरेन्द्र और गीता

नरेन्द्र सिंह गाँव का गौरव। भारतीय सेना में जवान। बहादुर, ईमानदार, और सबसे बढ़कर बहुत प्यार करने वाला।

उसकी शादी गीता से हुई थी। गीता पास के गाँव की, बहुत सुंदर, बहुत सरल, और बहुत प्यारी। उसकी आँखों में पहाड़ी झरने की मासूमियत थी, और हँसी में बुरांश के फूलों की खुशबू।

शादी को अभी सिर्फ एक साल ही हुआ था। गीता नई-नई बहू बनकर इस घर में आई थी। अभी वह यहाँ की हर दीवार से वाकिफ नहीं थी, हर रस्म से परिचित नहीं थी, पर उसे एक चीज़ पूरी तरह पता थी वह नरेन्द्र से बहुत प्यार करती थी।

नरेन्द्र भी उसे दीवानगी की हद तक चाहता था। जब भी घर होता, दोनों साथ बैठकर पहाड़ों को देखते। नरेन्द्र उसे बताता "देख गीता, वह चोटी जहाँ बादल रुकते हैं, वहाँ हम एक दिन घूमने जाएँगे। और वह नीचे खोह नदी, जहाँ पानी इतना साफ है, वहाँ हम साथ बैठेंगे।"

गीता मुस्कुराती "तुम तो बस सपने दिखाते हो। जब आते हो तो जाने की तैयारी में लग जाते हो।"

नरेन्द्र उसके बालों में हाथ फेरता "थोड़ा और धैर्य रखो। कुछ सालों में मैं रिटायर हो जाऊँगा। फिर हमेशा साथ रहेंगे। और इस बार छुट्टी में खेत के ऊपर नया घर बनाएँगे तुम्हारे लिए।"

गीता की आँखों में सपने थे। लाखों सपने।

3. वह आखिरी रात

छुट्टी खत्म हो रही थी। नरेन्द्र को अगले दिन वापस जाना था।

वह रात बहुत खास थी। पूरा चाँद निकला था। उसकी चाँदनी में पूरा आँगन डूबा हुआ था। दोनों छत पर बैठे थे। हाथ में हाथ।

गीता ने धीरे से कहा "नरेन्द्र, मुझे डर लगता है।"

"किस बात का ?"

"पता नहीं। हर बार जब तुम जाते हो, मन कहता है कहीं ऐसा न हो... कहीं तुम..."

नरेन्द्र ने उसका हाथ जोर से पकड़ लिया। "गीता, ऐसा मत कहो। मैं जल्दी लौटूँगा। बहुत जल्दी। और इस बार नया घर बनाएँगे तुम्हारे लिए। तुम्हारे सपनों का घर।"

गीता उसके कंधे पर सिर रखकर बैठ गई। "बस जल्दी आना। मैं रोज़ मंदिर में दीप जलाऊँगी।"

"मुझे पता है। वह दीप यहाँ तक पहुँचेगा। उसी की रोशनी में मैं दुश्मनों को देख पाऊँगा।"

दोनों चुप हो गए। बाहर हवा चल रही थी, और दूर कहीं खोह नदी की आवाज़ आ रही थी जैसे वह भी कुछ कहना चाहती हो।

सुबह नरेन्द्र चला गया। जाते-जाते उसने पलटकर देखा। गीता दरवाज़े पर खड़ी थी। उसकी आँखों में आँसू थे, पर होंठों पर मुस्कान। नरेन्द्र ने हाथ हिलाया। फिर वह पगडंडी पर गायब हो गया।

4. वह दोपहर

वह दिन १५ जनवरी की दोपहर गीता कभी नहीं भूली।

दोपहर का वक्त था। गीता खेतों में काम कर रही थी। तभी उसने देखा गाँव पर एक फौज की गाड़ी आ रही है। पीछे कई लोग।

उसका दिल जोर से धड़कने लगा। कुछ अटपटा-सा लगा। वह भागी-भागी घर पहुँची।

गाड़ी उनके घर के सामने रुकी। तीन अधिकारी उतरे। वर्दी में। चेहरे पर गंभीरता।

गीता के पैरों तले ज़मीन खिसक गई। वह दीवार का सहारा लेकर खड़ी हो गई।

सास बाहर आईं। ससुर भी। पूरा गाँव इकट्ठा हो गया।

एक अधिकारी ने आगे बढ़कर धीरे से कहा

"नरेन्द्र सिंह... देश की सीमा पर दुश्मनों से लड़ते हुए... शहीद हो गए। वह बहुत बहादुरी से लड़े। उन्होंने कई दुश्मनों को मार गिराया। पर आखिर में... वह हमेशा के लिए हमसे दूर चले गए।"

सास रो पड़ी। उसकी चीख पूरे गाँव में गूँज गई। ससुर की आँखें भर आईं उनके हाथ काँप रहे थे।

पर गीता वह कुछ पल तक शांत खड़ी रही। मानो उसने सुना ही न हो। फिर उसने धीरे-धीरे आकाश की ओर देखा। वहाँ एक बादल तैर रहा था। उसे लगा, जैसे उसमें नरेन्द्र का चेहरा है।

उसके होंठ काँपे। फिर धीमे से निकला

"मुझे तुम पर गर्व है।"

5. पार्थिव शरीर का आना

दो दिन बाद नरेन्द्र का पार्थिव शरीर गाँव लाया गया। तिरंगे में लिपटा हुआ

पूरा गाँव उमड़ पड़ा। सैकड़ों लोग दूर-दूर से आए। ढोल-दमाऊँ नहीं बज रहे थे। बस शोक का सन्नाटा था।

गीता आगे बढ़ी। उसके कदम काँप रहे थे, पर वह रुकी नहीं। वह उस पार्थिव शरीर के पास पहुँची। तिरंगे को छुआ। उसके हाथ काँप रहे थे।

फिर वह झुकी। उसने उसके माथे को छुआ। बर्फ-सा ठंडा। वही माथा, जिसे वह हर सुबह चूमती थी। वही माथा, जिस पर उसने सिंदूर लगाया था

उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। पर उसने आवाज़ नहीं की। वह बस उसे देखती रही बहुत देर तक।

फिर उसने धीमे से कहा

"तुमने वादा किया था जल्दी लौटने का... नया घर बनाने का... साथ बैठकर पहाड़ देखने का। तुम लौटे भी... पर अब पूरे देश के बेटे बनकर।"

पूरा गाँव सिसक रहा था।

6. रात का सन्नाटा

उस रात गीता सो नहीं पाई।

वह उसी छत पर बैठी रही, जहाँ वह आखिरी रात नरेन्द्र के साथ बैठी थी। चाँद फिर निकला था। वही चाँद, वही छत, वही हवा। पर वह नहीं था।

उसके हाथ में नरेन्द्र की आखिरी चिट्ठी थी जो कुछ दिन पहले आई थी।

"गीता, यहाँ बहुत ठंड है। बर्फ इतनी कि कलम नहीं चलती। पर तुम्हारी यादें दिल में इतनी गर्मी हैं कि ठंड का एहसास नहीं होता।

रात को जब चाँद निकलता है, तो मैं उसे देखता हूँ और सोचता हूँ वही चाँद गीता को भी दिख रहा होगा।

बस जल्दी ही छुट्टी मिलेगी। फिर हमेशा साथ रहेंगे। नया घर बनाएँगे। और उस घर की छत पर हर रात चाँद देखेंगे।

तुम्हारा नरेन्द्र"

गीता ने चिट्ठी को सीने से लगा लिया। फिर रो पड़ी। उस रात उसने बहुत रोया। इतना कि उसकी आँखें सूज गईं। पर सुबह होते-होते उसने आँसू पोंछ लिए।

क्योंकि उसे पता था नरेन्द्र यह नहीं चाहेगा कि वह रोए।

7. नई सुबह

कुछ दिनों बाद गाँव वाले उसके घर आए। किसी ने कहा "गीता, तुम अब क्या करोगी ? कहीं चली जाओगी अपने मायके ?"

गीता ने उनकी तरफ देखा। उसकी आँखों में एक अजीब-सी चमक थी।

"मैं कहीं नहीं जाऊँगी। यही मेरा घर है। नरेन्द्र ने मुझे यहीं छोड़ा है, मैं यहीं रहूँगी। और हाँ, मैं कुछ करूँगी।"

"क्या ?"

"नरेन्द्र चाहता था कि हम नया घर बनाएँ। वह घर तो नहीं बना पाई, पर मैं कुछ और बनाऊँगी। मैं गाँव के बच्चों को पढ़ाऊँगी। वही मेरा नया घर होगा।"

8. गीता का स्कूल

गीता ने अपने घर के एक कमरे को छोटा-सा स्कूल बना दिया। दीवारों पर चित्र लगाए। एक छोटा-सा ब्लैक बोर्ड लगाया। फिर गाँव के बच्चों को बुलाया।

शुरू में सिर्फ पाँच-सात बच्चे आते थे। फिर धीरे-धीरे संख्या बढ़ने लगी। गीता उन्हें पढ़ाती। सिखाती। उनसे प्यार करती।

बच्चे उसे 'गीता दीदी' कहते। वह उन्हें सिर्फ किताबी ज्ञान ही नहीं, जीवन की सीख भी देती

"देखो बच्चो, देश की रक्षा सिर्फ सीमा पर खड़े सैनिक नहीं करते। उनके पीछे खड़े परिवार भी उतना ही साहस रखते हैं। तुम्हारे पिता, तुम्हारे भाई वह सब देश सेवा कर रहे हैं। और तुम ? तुम पढ़कर देश की सेवा कर सकते हो।"

हर साल १५ जनवरी को वह एक विशेष दिन मनाती शहीद दिवस। उस दिन वह बच्चों को नरेन्द्र की कहानी सुनाती। उन्हें तिरंगा बनाना सिखाती। उनकी आँखों में देशभक्ति का दीप जलाती।

9. गाँव की शक्ति

साल बीतते गए। गीता अब बूढ़ी हो गई थी। उसके बाल सफेद हो गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ आ गई थीं। पर उसकी आँखों में वही चमक थी नरेन्द्र के प्यार की, देशभक्ति की।

उसके स्कूल से सैकड़ों बच्चे पढ़कर निकले। कई डॉक्टर बने, कई इंजीनियर, कई शिक्षक, और कई फौजी।

हाँ, कई लड़के उसके स्कूल में पढ़कर फौज में गए। जाते समय वह उनसे कहती

"बेटा, याद रखना तुम सिर्फ अपने परिवार के नहीं, पूरे देश के बेटे हो। और हाँ, अपनी पत्नी को चिट्ठी लिखते रहना। वह इंतज़ार करती होगी।"

वे लड़के उसके पैर छूते। "गीता माँ, आपकी दुआएँ हमारे साथ हैं।"

गाँव वाले अब उसे 'शहीद की बहू' नहीं कहते थे। वे उसे 'गाँव की शक्ति' कहते थे।

10. वह शाम फिर

एक शाम फिर वही चाँद, वही छत, वही हवा। गीता अब बहुत बूढ़ी थी। वह उसी छत पर बैठी थी, जहाँ पचास साल पहले वह नरेन्द्र के साथ बैठी थी।

हाथ में वही पुरानी चिट्ठी थी जो अब पीली पड़ चुकी थी, फट चुकी थी, पर उसने उसे संभालकर रखा था।

उसने चाँद को देखा। धीमे से मुस्कुराई। फिर कहा

"नरेन्द्र, देखो आज फिर चाँद निकला है। वही चाँद। तुम्हारा वादा याद है कि हम हर रात चाँद देखेंगे। मैं देख रही हूँ। तुम भी देख रहे हो न ?"

हवा में एक सरसराहट हुई। जैसे कोई कह रहा हो "हाँ, मैं देख रहा हूँ।"

गीता की आँखों से आँसू बहने लगे। पर इस बार वह आँसू दुख के नहीं थे वह गर्व के थे, प्यार के थे, उस अटूट विश्वास के थे जो पचास साल से भी ज्यादा समय से उसके दिल में था।

11. आज

आज गीता इस दुनिया में नहीं है। पर उसका स्कूल आज भी है। उसके पढ़ाए हुए बच्चे आज भी उसे याद करते हैं।

हर साल १५ जनवरी को पूरा गाँव उस स्कूल में इकट्ठा होता है। बच्चे तिरंगा लहराते हैं। शहीदों को श्रद्धांजलि देते हैं। और फिर सबसे बड़ी बात वे गीता की कहानी सुनते हैं।

कैसे एक नवविवाहिता ने अपने पति के शहीद होने के बाद भी हार नहीं मानी। कैसे उसने अपने आँसू पोंछकर एक नई राह चुनी। कैसे उसने गाँव के सैकड़ों बच्चों को पढ़ाया, संवारा, और उनमें देशभक्ति का जज्बा भरा।

गाँव के बुज़ुर्ग कहते हैं

"गीता कोई साधारण औरत नहीं थी। वह वीर की वधु थी। और वीर की वधु भी वीर होती है।"

12. उपसंहार

आज भी उस गाँव में, जब कभी कोई फौजी जवान छुट्टी पर आता है, तो वह सबसे पहले उस स्कूल जाता है। गीता की तस्वीर के सामने खड़ा होता है। सलामी देता है। फिर कहता है

"गीता माँ, आपने हमें सिखाया कि प्यार क्या होता है, त्याग क्या होता है, और देशभक्ति क्या होती है। आप हमेशा हमारे दिलों में रहेंगी।"

और उस स्कूल के आँगन में, जहाँ गीता ने हज़ारों बच्चों को पढ़ाया, वहाँ आज भी हर शाम एक दीप जलता है।

वह दीप गीता के नरेन्द्र के प्यार का है। उसके अटूट विश्वास का है। उस वीर वधु के साहस का है, जिसने पूरे गाँव को अपना परिवार बना लिया।

13. संदेश

शहीद का बलिदान सिर्फ एक सैनिक का नहीं होता, उसके परिवार का साहस भी उतना ही महान होता है।

एक वीर वधु जो अपने पति के शहीद होने के बाद भी हार नहीं मानती, जो अपने आँसू पोंछकर दूसरों के चेहरों पर मुस्कान लाती है, जो पूरे गाँव को अपना परिवार बना लेती है वह सिर्फ एक औरत नहीं, वह एक मिसाल होती है।

और उसी मिसाल से देश की रक्षा होती है। उसी मिसाल से नई पीढ़ी जागती है। उसी मिसाल से सीमा पर खड़ा हर जवान कहता है

"मेरे पीछे मेरा परिवार है,

मेरा गाँव है, मेरा देश है।

और मेरी वीर वधु है।"

अतुल नैथानी

नज़र उतारना – छल और ब्वाण
(सेवा धर्म और विश्वास का सच)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। दुगड़ा की पहाड़ी पृष्ठभूमि और लोक विश्वास पर आधारित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. दुगड़ा बाजार की बस्ती

उन दिनों दुगड़ा बाजार आज जैसा नहीं था। पक्की सड़कें नहीं थीं, बड़े-बड़े मकान नहीं थे, पत्थर और मिट्टी से बने छोटे-छोटे घर थे। चारों तरफ देवदार के घने जंगल, और हर घर के आँगन में तुलसी का पौधा।

उसी दुगड़ा बाजार के एक कोने में, एक छोटी-सी कुटिया थी। उस कुटिया में रहते थे मोहन लाल जी।

मोहन लाल जी को किसी ने कभी जवान नहीं देखा था। जब से दुगड़ा के लोगों को होश आया, मोहन लाल जी बूढ़े ही थे। सफेद बाल, सफेद दाढ़ी, कंधे पर एक पुराना झोला, और हाथ में एक छड़ी। पर सबसे खास चीज़ थी उनकी आँखें उन आँखों में एक अजीब-सी चमक थी, एक गहराई थी, जैसे वे सब कुछ देख सकती हों।

वैसे तो मोहन लाल जी सिलाई का काम करते थे पर बाप दादा ने यह परोपकार का काम सिखाया था नज़र उतारना छल और ब्वाण उतारना।

2. छल और ब्वाण क्या है ?

पहाड़ों में 'ब्वाण' शब्द बहुत पुराना है। इसे लोग 'प्रेत बाधा' भी कहते हैं जब किसी पर कोई अदृश्य शक्ति हावी हो जाती है, जब किसी को अचानक बुखार आ जाता है और कोई दवा काम नहीं करती, जब कोई बच्चा बिना बात के

रोता रहता है, खाना नहीं खाता, सोता नहीं तो लोग कहते थे "इस पर ब्वाण है ।" छल गया है

ब्वाण कोई बुरी चीज़ नहीं थी । यह एक मान्यता थी, एक विश्वास था । लोग मानते थे कि कभी-कभी कोई अदृश्य शक्ति, कोई छाया, कोई आत्मा किसी के शरीर में आ जाती है । उसे उतारने के लिए किसी सिद्धहस्त व्यक्ति की जरूरत होती है ।

और दुगड़ा में वह सिद्धहस्त व्यक्ति थे मोहन लाल जी ।

3. मोहन लाल जी का स्वरूप

मोहन लाल जी सुबह जल्दी उठते । खोह नदी में स्नान करते । फिर अपनी कुटिया में बैठकर पूजा करते । उनके पास कोई मंदिर नहीं था, कोई मूर्ति नहीं थी । बस एक छोटा-सा दीपक और कुछ पुरानी किताबें जिन्हें वे खोलते भी नहीं थे, बस हाथ लगाकर रख लेते थे ।

उनके कंधे पर हमेशा एक पुराना झोला रहता था । उस झोले में क्या था, किसी को नहीं पता । पर जब भी वे किसी के घर जाते, उस झोले से कुछ न कुछ निकलता कोई जड़ी-बूटी, कोई मंत्र लिखा कागज, कोई पवित्र राख ।

वे बहुत कम बोलते थे । पर जब बोलते थे, तो उनकी आवाज़ में एक अजीब-सी शक्ति थी । लोग कहते थे "मोहन लाल जी की बोली में जादू है ।"

4. वह रात, वह बच्चा

बात है कई साल पुरानी ।

दुगड़ा के एक छोटे-से घर में चार साल का एक बच्चा था नाम था मुन्ना । वह अचानक बीमार हो गया । तेज़ बुखार आ गया । शहर के डॉक्टर ने दवा दी, पर कोई असर नहीं हुआ । बच्चा न खाता था, न पीता था, न सोता था बस रोता रहता घंटों, लगातार, बिना रुके ।

माँ के आँसू सूख गए । पिता परेशान हो गए । घर में सन्नाटा छा गया ।

तीसरे दिन पड़ोस की एक बुढ़िया ने कहा "क्यों न मोहन लाल जी को बुला लो ? हो सकता है... छल या ब्वाण हो।"

पहले तो पिता को बुरा लगा। वह पढ़ा-लिखा आदमी था। उसे ऐसी बातों पर विश्वास नहीं था। पर बच्चे की हालत देखकर उसने सोचा कोशिश तो कर ही सकते हैं।

शाम को वह मोहन लाल जी की कुटिया पर गया।

5. मोहन लाल जी का आना

मोहन लाल जी उस शाम अपनी कुटिया में बैठे थे। सामने दीपक जल रहा था। उन्होंने आते ही पूछा "बच्चा बीमार है न ?"

पिता चौंक गए। "आपको कैसे पता ?"

मोहन लाल जी मुस्कुराए। "पता चल गया। चलो, देखते हैं।"

वह उठे। कंधे पर झोला लटकाया। और धीरे-धीरे उस घर की तरफ चल दिए।

जब वे पहुँचे, तो बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था। माँ उसे गोद में लिए पागल-सी हो रही थी। मोहन लाल जी ने कमरे में प्रवेश किया। चारों तरफ देखा। फिर बच्चे के पास गए।

उन्होंने बच्चे के माथे पर हाथ रखा। आँखें बंद कर लीं। कुछ देर तक ऐसे ही खड़े रहे। फिर आँखें खोलीं और बोले

"ब्वाण है। तीन दिन पहले लगा है। शाम के समय। जंगल के रास्ते से आते वक्त।"

माँ के होश उड़ गए। तीन दिन पहले वह बच्चे को लेकर शाम को खेत से लौटी थी। जंगल के रास्ते से।

"क्या करें जी ?" उसने गिड़गिड़ाकर पूछा।

मोहन लाल जी ने अपना झोला खोला। उसमें से थोड़ी-सी राख निकाली एक छोटा-सा कागज निकाला। उस कागज पर उन्होंने कुछ लिखा कोई लकीरें, कोई चक्र। फिर उस कागज में राख बाँधकर एक पोटली बना ली।

6. मंत्र और विश्वास

मोहन लाल जी ने उस पोटली को बच्चे के सिरहाने रखा। फिर उन्होंने धीरे-धीरे मंत्र पढ़ना शुरू किया। वह मंत्र कोई संस्कृत का नहीं था, कोई शास्त्रों का नहीं था। वह बस कुछ शब्द थे पुराने, बहुत पुराने जो उनके बाप-दादा से चले आ रहे थे।

"ऊँ ह्रीं... ब्वाण राजा... जंगल का रखवाला... पहाड़ का पहरेदार... इस बच्चे को छोड़ दे... अपनी राह चला जा... ऊँ ह्रीं..."

उनकी आवाज़ में एक अजीब-सी शक्ति थी। घर के सब लोग चुपचाप बैठे सुन रहे थे। बाहर हवा चल रही थी, और दीपक की लौ थरथरा रही थी।

करीब आधे घंटे तक मंत्र चलता रहा। फिर अचानक बच्चा चुप हो गया। उसने गहरी साँस ली। फिर आँखें खोलीं। उसने अपनी माँ की तरफ देखा। और पहली बार तीन दिन में मुस्कुराया।

माँ फूट-फूटकर रो पड़ी।

मोहन लाल जी ने धीरे से कहा "अब ठीक है। खाना-पीना दे दो। कल तक बिल्कुल ठीक हो जाएगा।"

पिता ने उनके पैर छुए। "मोहन लाल जी, आपने मेरे बच्चे की जान बचा ली। बताइए, कितने पैसे दूँ ?"

मोहन लाल जी की आँखें चमक उठीं। उन्होंने धीमे से कहा

"पैसे ? बेटा, मैं पैसे नहीं लेता। यह तो सेवा है। बाप-दादा ने सिखाया है सेवा ही धर्म है।"

7. सेवा का धर्म

मोहन लाल जी कभी किसी से पैसे नहीं लेते थे। लोग मनाने पर कुछ रख दे जाते अनाज, सब्जी, कभी कपड़ा। पर वे कभी कुछ माँगते नहीं थे। जिसने जो दिया उन्होंने वो ही लिया।

उनका कहना था "यह जो शक्ति है, यह मेरी नहीं है। यह तो ऊपर वाले की है। वे घर-घर जाते। किसी का भेद नहीं देखते। धनी हो या गरीब, ऊँची जाति हो या नीची सबके लिए एक जैसा प्रेम। सबके लिए एक जैसा समर्पण

लोग उन्हें बुलाते "मोहन लाल जी, मेरा बच्चा बीमार है।" और वे चल देते कभी रात हो, कभी दिन, कभी बारिश हो, कभी तूफान वे जरूर पहुँचते।

8. मेरी दादी

मुझे आज भी याद है, जब मैं छोटा था।

मेरी दादी ने मुझे मोहन लाल जी को दिखाया। मुझे बुखार जाता था, दवा से ठीक नहीं हो रहा था। दादी ने उनको बुलवा भेजा। वो आए

मैं डर रहा था। मैंने सुना था कि वे मंत्र पढ़ते हैं, झाड़-फूंक करते हैं। मुझे लगा, वे कुछ डरावना करेंगे।

पर जब मैं उनके पास गया, तो उन्होंने मुझे देखकर बस मुस्कुरा दिया। वह मुस्कान आज भी मेरी आँखों में है। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा। बस हाथ रखा। कुछ मंत्र फूंक कर हाथ के सिर पर घुमाया। फिर दादी से बोले "डरो मत। बस दूध में हल्दी डालकर पिला दो। कल तक ठीक हो जाएगा।"

अगले दिन मैं बिल्कुल ठीक था।

दादी ने कहा "देखा बेटा, मोहन लाल जी के हाथ में जादू है।"

तब मुझे समझ नहीं आया। अब समझ आता है वह जादू नहीं था, वह विश्वास था। उनका विश्वास, दादी का विश्वास, और मेरा उस विश्वास में डूब जाना। यही सबसे बड़ी दवा थी।

9. बदलता समय

समय बदला। दुगड़ा बदल गया। सड़कें बनीं, मकान बने, लोग पढ़े-लिखे हो गए। डॉक्टर आ गए, अस्पताल खुल गए, दवाएँ आसानी से मिलने लगीं

मोहन लाल जी की कुटिया पर अब पहले जैसी भीड़ नहीं आती थी। लोग हँसते थे "ढोंग है, झूठ है, अंधविश्वास है।"

मोहन लाल जी चुप रहते। वे किसी से बहस नहीं करते थे। बस मुस्कुरा देते थे। और जो कोई आता था, उसकी सेवा करते थे।

एक दिन मैं उनसे मिलने गया। वे बहुत बूढ़े हो गए थे। उनके हाथ काँपते थे, आँखों में वह चमक अब भी थी, पर शरीर जवाब दे चुका था।

मैंने पूछा " मोहन लाल जी, लोग अब आपको ढोंगी कहते हैं। बुरा नहीं लगता ?"

वह मुस्कुराए। फिर बोले "बेटा, जब कोई मुझे बुलाता था, तो मैं जाता था आज नहीं बुलाते, तो नहीं जाता। मुझे क्या ? मैंने तो सेवा की। वह सेवा मेरा धर्म था। चाहे लोग मानें या न मानें।"

10. आखिरी दिन

मोहन लाल जी के आखिरी दिनों की बात है। एक शाम वे अपनी कुटिया में बैठे थे। सामने दीपक जल रहा था। तभी एक औरत आई रोती हुई, गिड़गिड़ाती हुई। उसका बच्चा बीमार था, डॉक्टर दुगड़डा में नहीं था।

मोहन लाल जी उठे। काँपते हाथों से झोला उठाया। और उसके घर चल दिए।

उस रात उन्होंने फिर से वही मंत्र पढ़े, वही राख लगाई, वही पोटली बाँधी। सुबह तक बच्चा ठीक हो गया।

वह उनकी आखिरी सेवा थी।

तीन दिन बाद मोहन लाल जी नहीं रहे। वह चुपचाप सो गए, और फिर कभी नहीं उठे।

11. आज

आज मोहन लाल जी की कुटिया नहीं है। वहाँ अब एक पक्का मकान बन गया है। उनके झोले का क्या हुआ, किसी को नहीं पता। उनकी वे किताबें कहाँ गईं, किसी को याद नहीं।

पर दुगड़ा के बुज़ुर्ग आज भी उन्हें याद करते हैं। जब भी कोई बच्चा बिना बात के रोता है, तो वे कहते हैं "मोहन लाल जी होते तो... पर अब कहाँ हैं वे।"

मैं आज भी जब दुगड़ा जाता हूँ, तो उस जगह पर जरूर रुकता हूँ जहाँ उनकी कुटिया थी। वहाँ एक पल खड़ा होता हूँ। आँखें बंद करता हूँ। और मुझे लगता है, जैसे वे अब भी वहीं हैं

कंधे पर झोला, हाथ में छड़ी, आँखों में वही चमक, और होंठों पर वही मुस्कान।

12. उपसंहार

मोहन लाल जी कोई साधारण बूढ़े नहीं थे। वे एक युग थे। विश्वास का युग, सेवा का युग, निस्वार्थ प्रेम का युग।

उनके मंत्रों में कोई जादू नहीं था। उनकी राख में कोई ताकत नहीं थी। पर उनके विश्वास में ताकत थी। और उस विश्वास ने हजारों लोगों की जान बचाई, हजारों परिवारों को सुख दिया।

आज उनके जैसे लोग कम हो गए हैं। डॉक्टर हैं, दवाएँ हैं, अस्पताल हैं। पर वह विश्वास, वह आत्मीयता, वह निस्वार्थ सेवा वह कहीं खो गई है।

शायद इसलिए बुज़ुर्ग आज भी कहते हैं "मोहन लाल जी होते तो... पर अब कहाँ हैं वे।"

13. संदेश

मोहन लाल जी ने सिखाया सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है। विश्वास ही सबसे बड़ी दवा है। और प्रेम ही सबसे बड़ा मंत्र है। चाहे लोग मानें या न मानें, जो

सच्चे मन से सेवा करता है, वह कभी नहीं मरता। वह यादों में जीता है, वह विश्वास में जीता है, वह हर उस बच्चे की हँसी में जीता है, जिसकी जान उसने बचाई।

अतुल नैथानी

पलायन की वेदना - एक बूढ़े का अकेलापन (गढ़वाल के पहाड़ों से एक मार्मिक कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। उत्तराखंड के पहाड़ों से हो रहे पलायन की मार्मिक पीड़ा को दर्शाने वाली यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ का वो गाँव

दुगड्डा से थोड़ा ऊपर, जहाँ बादल घरों से होकर गुजरते थे, वहाँ एक छोटा-सा गाँव था नाम था फल्दियाल गाँव।

चारों तरफ देवदार के ऊँचे-ऊँचे पेड़, सीढ़ीदार खेत जो पहाड़ियों की गोद में बसे थे, और बीच में बहती एक पतली-सी धारा जिसका पानी बर्फ की तरह ठंडा और शहद की तरह मीठा था। सुबह होते ही पक्षियों का संगीत शुरू हो जाता, और शाम ढलते ही घरों में दीप जलने लगते।

उसी गाँव के एक कोने में, एक पुराना-सा घर था। पत्थर और मिट्टी से बना, छत पर काली पठाल, और आँगन में तुलसी का पौधा। उस घर में रहते थे दादा भवानी सिंह, उनकी पत्नी, और उनका बेटा दिनेश।

पर अब वह घर सूना था।2. दादा भवानी सिंह

दादा भवानी सिंह पैंसठ साल के थे। सफेद बाल, सफेद दाढ़ी, और आँखों में एक गहरी उदासी। वह रोज़ सुबह उठते, अपने खेतों की तरफ देखते, और फिर वापस लौट आते।

उनके खेत अब सूख गए थे। जहाँ कभी धान की फसल लहलहाती थी, वहाँ अब झाड़ियाँ उग आई थीं। जहाँ कभी बच्चे खेलते थे, वहाँ अब सन्नाटा था।

उनका बेटा दिनेश कुछ साल पहले दिल्ली चला गया था। नौकरी के लिए। पहले हर महीने फोन करता था, फिर सिर्फ त्योहारों पर, फिर कभी-कभार अब तो साल में एक-दो बार ही फोन आता है।

दादी (उनकी पत्नी) तीन साल पहले चल बसीं। उन्हें अस्पताल ले जाना था, पर पहाड़ों में अस्पताल नहीं था। शहर ले जाते, तो रास्ते में ही दम तोड़ देतीं। वह यहीं, इसी गाँव के श्मशान में जली थीं।

तब से दादा भवानी सिंह अकेले हैं। बस एक बूढ़ा आदमी और उसका सूना घर।

3. पलायन का सिलसिला

फल्दियाल गाँव कभी बहुत हरा-भरा था। यहाँ सौ से ज़्यादा घर थे। बच्चों की किलकारियाँ गूँजती थीं। त्योहारों पर पूरा गाँव इकट्ठा होता था। ढोल-दमाऊँ बजते थे, और लोग नाचते थे।

पर अब ?

अब सिर्फ सत्ताईस घर बचे हैं। बाकी सब बंद हैं। उनके दरवाज़ों पर जंग लग गई है, आँगन में घास उग आई है, और छतें गिरने लगी हैं।

हर साल कोई न कोई परिवार गाँव छोड़कर चला जाता है। पहले युवा गए, फिर उनके माँ-बाप, फिर बच्चे। अब तो बस कुछ बूढ़े बचे हैं जैसे दादा भवानी सिंह जो अपनी मिट्टी से इतना प्यार करते हैं कि उसे छोड़ नहीं सकते कारण ? बहुत हैं।

स्कूल नहीं है, अस्पताल नहीं है, नौकरी नहीं है। सड़कें टूटी हैं, पानी की किल्लत है, खेती अब लाभ नहीं देती। शहरों में बिजली है, पानी है, नौकरी है, स्कूल हैं। तो लोग जाते हैं।

पर जाते वक्त क्या छोड़ जाते हैं यह कोई नहीं सोचता।

4. दादा भवानी सिंह की शाम

हर शाम दादा भवानी सिंह अपने घर के बाहर बैठते हैं। एक पुरानी चारपाई पर, जिसकी रस्सियाँ टूट चुकी हैं, पर वह उसे बैठाते रहते हैं।

सामने पहाड़ है वही पहाड़, जिस पर वह बचपन में चढ़ते थे, जहाँ से वह लकड़ियाँ लाते थे, जहाँ वह अपनी भैंसें चराते थे।

वह उसे देखते हैं। घंटों देखते हैं। कभी-कभी बातें करते हैं

"पहाड़... तू तो वैसा ही है। उतना ही बड़ा, उतना ही हरा। पर तेरे बच्चे कहाँ गए ? तेरी गोद में खेलने वाले बच्चे कहाँ हैं ? तेरे खेतों में काम करने वाले जवान कहाँ हैं ?"

पहाड़ चुप रहता है। बस हवा में पत्तों की सरसराहट होती है जैसे वह भी कुछ कहना चाहता हो, पर कह नहीं पाता।

5. दिनेश का फोन

एक दिन फोन की घंटी बजी। दादा भवानी सिंह ने उठाया। दूसरी तरफ दिनेश था।

"पिता जी, कैसे हैं आप ?"

"ठीक हूँ बेटा। तू कैसा है ?"

"मैं भी ठीक हूँ। पिता जी, एक बात कहनी थी।"

"बोल बेटा।"

"पिता जी... हम यहीं सेटल हो गए हैं। दिल्ली में। बच्चों का स्कूल यहीं है नौकरी भी अच्छी है। अब... अब हम वापस नहीं सकते। आप जानते हों बच्चों की पढ़ाई और जीवन की रोजी रोटी का सवाल है।

दादा भवानी सिंह चुप रहे। बहुत देर चुप रहे।

"पिता जी, सुन रहे हो ?"

"हाँ बेटा, सुन रहा हूँ।"

"तुम भी यहाँ आ जाओ। हमारे साथ रहो। वहां अकेले कैसे रहोगे ?"

दादा भवानी सिंह ने अपने आँगन की तरफ देखा। वह तुलसी का पौधा, जो उनकी पत्नी ने लगाया था। वह पीपल का पेड़, जिसके नीचे वह बैठते थे। वह खेत, जहाँ उनके पिता खेती करते थे।

"बेटा, मैं नहीं आ सकता।"

"क्यों पिता जी ?"

"यह मेरा घर है बेटा। तेरे दादा का घर, तेरे परदादा का घर। यह मिट्टी मेरी माँ है। मैं इसे छोड़कर नहीं जा सकता।"

"पर पिता जी, वहाँ कुछ नहीं है। न स्कूल, न अस्पताल, न नौकरी। वहाँ रहकर क्या करोगे ?"

"बेटा, यहाँ सब कुछ है। यह पहाड़ है, यह हवा है, यह पानी है। तुम शहरों में भूल गए यह सब। हम यहीं रहेंगे। जब तक साँस है, यहीं रहेंगे।"

फोन कट गया। दादा भवानी सिंह ने फोन रखा। फिर वहीं बैठे रहे बहुत देर तक।

6. सूना घर

रात हो गई। दादा भवानी सिंह ने चूल्हा जलाया। अपने लिए रोटी बनाई। पर खाने का मन नहीं था।

उन्होंने अपनी पत्नी की तस्वीर देखी दीवार पर लगी, पुरानी, फीकी पड़ चुकी। उससे बातें करने लगे

"सुनती हो ? बेटा नहीं आएगा अब। वह दिल्ली में सेटल हो गया। हम अकेले रह गए। पर तू चली गई। मैं अकेला रह गया।"

तस्वीर चुप थी। पर उसे लगा, जैसे वह मुस्कुरा रही हो।

वह उठा। बाहर आया। पूरा गाँव सूना था। आस-पास के ज़्यादातर घरों में अँधेरा था। बस दो-चार घरों में दीप जल रहे थे उन बूढ़ों के, जो अपनी मिट्टी से प्यार करते थे।

उसने आसमान की तरफ देखा। लाखों तारे चमक रहे थे। वही तारे, जो उसके बचपन में भी चमकते थे। वही चाँद, वही हवा, वही पहाड़।

पर वही लोग नहीं थे।

7. सुबह की सैर

अगली सुबह दादा भवानी सिंह जल्दी उठे। वह रोज़ की तरह अपने खेतों की तरफ चल दिए।

रास्ते में उनका सामना हुआ गोपाल दा से। गोपाल दा भी उन्हीं की तरह बूढ़े थे, उन्हीं की तरह अकेले।

"कैसे हो भवानी ?"

"ठीक हूँ। तू सुना ?"

"सुना क्या ?"

"दिनेश ने फोन किया था। बोला वापस नहीं आएँगे।"

गोपाल दा चुप हो गए। फिर बोले "मेरा बेटा भी कल फोन करके यही बोला। बोला पिता जी, अब हम यहीं रहेंगे। आप भी आ जाओ।"

"तू क्या बोला ?"

"मैंने बोला बेटा, मैं नहीं आ सकता। यह मेरा घर है। यह मेरे बाप का घर है। मैं इसे छोड़कर नहीं जा सकता।"

दोनों चुप हो गए। फिर साथ-साथ चल दिए खाली खेतों के बीच, सूने रास्तों पर, अपनी यादों के सहारे।

8. गाँव का आखिरी बच्चा

उसी गाँव में एक और घर था। वहाँ एक बच्चा रहता था नाम था चुन्नू। उम्र थी आठ साल। उसके माता-पिता दो साल पहले देहरादून चले गए थे। नौकरी के लिए। चुन्नू को अपनी दादी के पास छोड़ गए थे।

"बेटा, हम जल्दी आएँगे। तू पढ़ाई कर।"

पर वह दो साल में सिर्फ एक बार आए थे।

चुन्नू अब गाँव का इकलौता बच्चा था। बाकी सब बच्चे शहर चले गए थे। स्कूल बंद हो गया था, क्योंकि बच्चे ही नहीं बचे थे। चुन्नू अब पढ़ नहीं पाता था। वह बस अपनी दादी के साथ रहता था, और खेतों में काम करता था।

एक दिन उसने दादी से पूछा "दादी, माँ-पापा कब आएँगे ?"

दादी की आँखें भर आईं। "बेटा, वह जल्दी आएँगे।"

"पर दादी, वह तो रोज़ कहते थे कि जल्दी आएँगे। अब तो दो साल हो गए

दादी ने उसे गले से लगा लिया। कुछ नहीं बोलीं। क्या बोलतीं ?

चुन्नू रोज़ शाम को उस पगडंडी पर बैठता, जहाँ से उसके माता-पिता गए थे घंटों बैठा रहता। उसे लगता, शायद आज आ जाएँ। पर कोई नहीं आता।

9. बारिश की रात

उस साल बारिश बहुत हुई। जुलाई का महीना था। रात को तेज़ आँधी आई, पेड़ गिर गए। सड़कें बंद हो गईं।

दादा भवानी सिंह के घर की छत से पानी टपकने लगा। वह उठे। टूटी-फूटी बाल्टियाँ रखीं। पर पानी नहीं रुका।

सुबह उन्होंने देखा उनके घर की एक दीवार गिर गई थी। वही दीवार, जिसे उनके पिता ने बनाया था। वही दीवार, जिसमें उनकी माँ ने अपने हाथों से मिट्टी लगाई थी।

वह बैठ गए। बहुत देर बैठे रहे। फिर उठे। उन्होंने उन पत्थरों को इकट्ठा करना शुरू किया एक-एक करके।

गोपाल दा आए। "क्या कर रहे हो भवानी ?"

"दीवार बना रहा हूँ।"

"अकेले ?"

"हाँ। कोई और है क्या ?"

गोपाल दा भी बैठ गए। उन्होंने भी पत्थर उठाने शुरू कर दिए। दो बूढ़े एक टूटी दीवार को बना रहे थे। उनके हाथ काँपते थे, पीठ दुखती थी, पर वह बना रहे थे।

क्योंकि वह सिर्फ दीवार नहीं बना रहे थे। वह अपनी यादें बना रहे थे। अपना बचपन बना रहे थे। अपनी पहचान बना रहे थे।

10. आखिरी दिन

दादा भवानी सिंह अब और कमज़ोर हो गए थे। वह उठ नहीं पाते थे। खाना नहीं बना पाते थे। चुन्नू की दादी उनके लिए खाना भेज देती थीं।

एक दिन उन्होंने गोपाल दा को बुलाया।

"गोपाल, अब मैं नहीं रहूँगा।"

"ऐसा मत बोल भवानी।"

"सच कह रहा हूँ। देख लिया मैंने अपना गाँव सूना होते। अपने बच्चों को दूर जाते। अपनी धरती को बंजर होते। अब और नहीं देख सकता।"

"तो क्या करेगा ?"

"कुछ नहीं। बस... बस यह आखिरी इच्छा है मुझे इसी गाँव में जलाना। इसी पहाड़ की गोद में। ताकि मेरी राख इस मिट्टी में मिल जाए।"

गोपाल दा रो पड़े। "ऐसा मत बोल भवानी। तू ठीक हो जाएगा।"

पर दादा भवानी सिंह ठीक नहीं हुए।

तीन दिन बाद वह चल बसे। चुपचाप। अकेले। उनके पास कोई नहीं था न बेटा, न बहू, न पोता। बस गोपाल दा थे, और चुन्नू की दादी।

उनका अंतिम संस्कार उसी गाँव के छोटे-से श्मशान में हुआ। वहाँ सिर्फ पाँच लोग थे गोपाल दा, चुन्नू की दादी, और तीन और बूढ़े।

चुन्नू ने पूछा "दादी, दादा भवानी कहाँ गए ?"

दादी ने उसे गले से लगा लिया। "बेटा, वह उस पहाड़ में मिल गए।"

11. उस दिन के बाद

उस दिन के बाद गाँव और सूना हो गया।

गोपाल दा अब और अकेले हो गए। वह रोज़ उस टूटी दीवार के पास जाते, जिसे उन्होंने दादा भवानी के साथ मिलकर बनाया था। वहीं बैठते। घंटों बैठते।

चुन्नू अब भी उस पगडंडी पर बैठता है। उसके माता-पिता अब भी नहीं आए। दो साल और बीत गए। अब वह दस साल का है। उसे अब यकीन नहीं रहा कि वह कभी आएँगे।

पर वह बैठता है। रोज़ बैठता है। क्योंकि उसके पास और कोई काम नहीं है न स्कूल है, न दोस्त हैं, न खेल। बस वह पगडंडी है, और उसका इंतज़ार।

12. आज

आज फल्दियाल गाँव में सिर्फ उन्नीस लोग रहते हैं। सब बूढ़े। सब अकेले उनके बच्चे शहरों में हैं दिल्ली, देहरादून, मुंबई, लखनऊ। कभी-कभार फोन कर लेते हैं। कभी-कभार त्योहारों पर आ जाते हैं। पर वापस नहीं आते।

घर खंडहर हो रहे हैं। खेत बंजर हो रहे हैं। स्कूल बंद है। अस्पताल नहीं है सड़कें टूटी हैं। दुकानें बंद हैं।

पर पहाड़ अब भी वैसा ही है। उतना ही ऊँचा, उतना ही हरा। देवदार के पेड़ अब भी हवा में झूमते हैं। खोह नदी अब भी बहती है कल-कल, कल-कल। पक्षी अब भी गाते हैं। सूरज अब भी निकलता है। चाँद अब भी चमकता है।

बस इंसान नहीं हैं।

13. एक बूढ़े का दर्द

गोपाल दा अब नब्बे साल के हैं। वह रोज़ सुबह उठते हैं। अपने घर के बाहर बैठते हैं। दूर पहाड़ों को देखते हैं।

कभी-कभी वह बोलते हैं

"पहाड़, तू बता कहाँ गए तेरे लाल ? कहाँ गए वह जवान, जो तेरी गोद में खेले ? कहाँ गए वह किसान, जो तेरे खेतों में हल चलाते थे ? कहाँ गए वह बच्चे, जिनकी किलकारियों से तेरा आँगन गूँजता था ?"

पहाड़ चुप रहता है। बस हवा चलती है ठंडी, उदास, सूनी।

फिर वह मुस्कुराते हैं एक दर्द भरी मुस्कान।

"पर तू रो मत। तू तो है। तू हमेशा रहेगा। चाहे कोई हो या न हो। तू रहेगा और तुझे देखकर, शायद एक दिन तेरे लाल वापस आएँ।"

14. उपसंहार

यह कहानी सिर्फ दादा भवानी सिंह की नहीं है। यह कहानी है उन हज़ारों बूढ़ों की, जो पहाड़ों में अकेले रह गए हैं।

यह कहानी है उन सूने घरों की, जिनके दरवाज़ों पर जंग लग गई है। यह कहानी है उन बंजर खेतों की, जहाँ कभी फसलें लहलहाती थीं।

यह कहानी है पलायन की वेदना की।

पलायन सिर्फ शहर जाना नहीं है। पलायन है अपनी जड़ों को छोड़ना, अपनी मिट्टी को छोड़ना, अपनी पहचान को छोड़ना। पलायन है एक बूढ़े को उसके

आखिरी दिनों में अकेला छोड़ देना। पलायन है एक बच्चे को उसके माता-पिता से दूर कर देना। पलायन है एक गाँव को सूना कर देना।

और सबसे बड़ी बात पलायन है एक सवाल, जिसका जवाब किसी के पास नहीं है।

15. संदेश

पहाड़ों से पलायन सिर्फ एक सांख्यिकी नहीं है।

यह एक त्रासदी है।

यह एक बूढ़े का अकेलापन है,

एक बच्चे का सूनापन है,

एक गाँव का मर जाना है।

पहाड़ बुलाते हैं

पर कोई सुनने वाला नहीं।

मिट्टी पुकारती है

पर कोई लौटने वाला नहीं।

काश! एक दिन यह पलायन रुके।

काश! एक दिन यह बच्चे वापस आएँ।

काश! एक दिन यह गाँव फिर से बसें।

काश! एक दिन पहाड़ फिर से गूँजें

बच्चों की किलकारियों से,

जवानों की मेहनत से,

बूढ़ों की दुआओं से।

तब तक

यह पहाड़ चुपचाप खड़ा रहेगा।

इंतज़ार करता हुआ।

अपने लालों के लौटने का।

अतुल नैथानी

ढाकर – पहाड़ की पीठ
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक मार्मिक कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। गढ़वाल के पहाड़ों में सामान ढोने वाले 'ढाकर' की मार्मिक जीवन-यात्रा पर आधारित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. वह सुबह

दुगड्डा का बाज़ार अभी पूरी तरह जागा भी नहीं था।

सुबह के चार बजे होंगे। चारों तरफ घना अँधेरा था, बस दूर कहीं मुर्गे की बाँग सुनाई दे रही थी। ओस से भरी सड़क पर एक-दो दुकानों में ही रोशनी थी उन दुकानदारों की, जो सबसे पहले उठते हैं, सबसे पहले दुकान खोलते हैं, और सबसे पहले ढाकरों का इंतज़ार करते हैं।

उसी अँधेरे में, एक छोटे-से घर के आँगन में, हरीश ढाकर अपनी कंडी कस रहा था।

कंडी- पीठ पर बाँधने वाली बाँस की टोकरी। उसकी ज़िन्दगी का सहारा, उसकी रोज़ी-रोटी, उसका सबसे बड़ा साथी।

हरीश ने पहले कंडी को अच्छी तरह जाँचा रस्सियाँ मज़बूत हैं कि नहीं। फिर सामान रखना शुरू किया नमक की बोरी, तेल की कुप्पियाँ, गुड़ का पैकेट, कुछ किराने का सामान, और...

एक लाल चुनरी।

उस चुनरी को उसने बहुत संभालकर रखा सबसे ऊपर, ताकि नीचे न दबे, ताकि उसमें झुर्रियाँ न पड़ें, ताकि वह साफ़ और सुंदर रहे।

वह चुनरी उसने अलग से रखी थी। क्योंकि यह सिर्फ सामान नहीं था। यह एक माँ की इच्छा थी अपनी बेटी की शादी के लिए। उस माँ ने छह महीने से जोड़-जोड़कर पैसे इकट्ठे किए थे, तब यह चुनरी खरीदी थी। और हरीश को सौंपते वक्त उसकी आँखों में एक अजीब-सी चमक थी

"बेटा, यह चुनरी मेरी बेटी की शादी में पहनाई जानी है। इसे बहुत संभालकर ले जाना।"

हरीश ने सिर हिलाया था। वह जानता था यह सिर्फ एक कपड़ा नहीं, एक माँ का सपना है, एक बेटी की खुशी है, एक परिवार की उम्मीद है।

2. हरीश ढाकर

हरीश कोई साधारण आदमी नहीं था। वह एक ढाकर था पहाड़ों पर सामान ढोने वाला। उसकी उम्र करीब पैंतालीस साल रही होगी। काला-साँवला रंग, पतला-दुबला शरीर, पर लोहे-जैसी मज़बूती। उसके कंधों पर रस्सियों के गहरे निशान थे बीस सालों की मेहनत के निशान।

वह बीस साल से यह काम कर रहा था। रोज़ सुबह चार बजे उठना, सामान लादना, और फिर पहाड़ के उन गाँवों तक जाना जहाँ सड़क नहीं पहुँची थी कभी दस किलोमीटर, कभी बीस, कभी पैंतीस। कभी एक दिन में वापस, कभी दो-तीन दिन बाद।

उसकी पीठ पर पड़ने वाला बोझ कभी तीस किलो से कम नहीं होता था, कभी पचास से ज़्यादा भी हो जाता था। पर वह कभी नहीं रुका। बारिश हो या धूप, बर्फ़ हो या तूफान वह चलता रहा। क्योंकि उसे पता था उसके इंतज़ार में कई लोग हैं, कई परिवार हैं, कई उम्मीदें हैं।

उसकी पत्नी पाँच साल पहले चल बसी थी। बीमारी के चलते। उसे अस्पताल ले जाना था, पर रास्ते ही नहीं थे। तब से वह अकेला था। उसका कोई बच्चा नहीं था। बस वह अकेला, अपनी कंडी के साथ।

पर उसने कभी शिकायत नहीं की। वह चुपचाप काम करता रहा। चुपचाप बोझ उठाता रहा। चुपचाप लोगों तक सामान पहुँचाता रहा।

3. वह रास्ता

हरीश ने कंडी उठाई। करीब चालीस किलो का बोझ।

उसने पहले रस्सी को कंधों पर कसा, फिर माथे पर डोका टिकाया वह चमड़े का पट्टा जो माथे पर लगता है और बोझ को संतुलित करता है। एक गहरी साँस ली। फिर चल पड़ा।

रास्ता आसान नहीं था।

पहले तो दुगड्डा के बाज़ार से निकलकर एक पक्की सड़क थोड़ी दूर तक जाती थी, फिर शुरू हो जाता था कच्चा पहाड़ी रास्ता। पत्थरों से भरा, उबड़-खाबड़, कहीं फिसलन भरा, कहीं इतना संकरा कि बस एक पैर रखने जितनी जगह।

एक तरफ ऊँची पहाड़ी थी, दूसरी तरफ गहरी खाई और उसमें बहती खोह नदी। उसकी आवाज़ दूर से सुनाई देती थी कल-कल, कल-कल जैसे वह भी कुछ कहना चाहती हो, पर कह नहीं पाती।

हरीश धीरे-धीरे चल रहा था। उसके पैरों में जूते नहीं थे बस पुराने टायर के चप्पल, जो उसने खुद बनाए थे। वह हर पत्थर को पहचानता था, हर मोड़ को जानता था, हर खतरे से वाकिफ था।

बीस साल में उसने यह रास्ता हज़ारों बार तय किया था। फिर भी हर बार नया था। हर बार उतना ही कठिन। हर बार उतना ही खतरनाक।

4. कदमों का सफर

सुबह की ठंडी हवा चल रही थी। पहाड़ों पर कोहरा छाया हुआ था। देवदार के पेड़ों की चोटियाँ बादलों में खोई हुई थीं। बीच-बीच में पक्षियों की आवाज़ आ रही थी कोयल की कूक, कठफोड़वे की टक-टक।

हरीश के कदम धीमे थे, पर स्थिर। हर कदम पर साँस तेज़ होती, पर वह रुकता नहीं था। माथे पर पसीना आने लगा था। गर्मी बढ़ रही थी। सूरज अब पेड़ों के बीच से झाँकने लगा था।

वह चलता रहा। एक घंटा, दो घंटे, तीन घंटे।

बीच-बीच में वह रुकता, पानी पीता, थोड़ा साँस लेता, फिर चल पड़ता। उसके साथ कोई नहीं था। बस उसकी कंडी थी, उसकी लाठी थी, और उसके इरादे थे।

रास्ते में कई मोड़ आए। कई खड़ी चढ़ाइयाँ। कई फिसलन भरे पत्थर। एक जगह तो रास्ता इतना संकरा था कि उसे दीवार का सहारा लेकर चलना पड़ा. एक पैर संभालकर रखा, फिर दूसरा। नीचे खाई थी सौ फीट से भी गहरी।

पर हरीश को डर नहीं था। उसे डरना आता ही नहीं था। वह बस चलता रहा।

5. वह मोड़

दोपहर तक वह एक पुराने मोड़ पर पहुँचा जहाँ से पूरी घाटी दिखती थी।

वहाँ एक बड़ा-सा पत्थर था, जहाँ वह हमेशा रुका करता था। उसने कंडी उतारी। पीठ पर रस्सी के गहरे निशान बन गए थे। उसने पानी की बोतल निकाली। पीने ही वाला था कि...

"बेटा, थक गया होगा... थोड़ा पानी पी ले।"

उसने पीछे देखा। एक बुज़ुर्ग महिला खड़ी थी। सफेद बाल, सफेद साड़ी, हाथ में लाठी। उसकी आँखों में एक अजीब-सी चमक थी।

हरीश मुस्कुराया। "नहीं माँ, मेरे पास पानी है।"

"बेटा, अपना पानी आगे के लिए बचा। मेरा लाया पानी पी ले। यहाँ के झरने का है, बहुत मीठा है।"

उसने एक मिट्टी का घड़ा बढ़ाया। हरीश ने पानी पिया। सच में, बहुत मीठा था।

"कहाँ जा रहे हो बेटा ?"

"ऊपर वाले गाँव में, बिजली गाँव। सामान पहुँचाना है।"

"बहुत दूर है बेटा। बहुत थक जाओगे।"

"थकूँगा तो सही माँ। पर वहाँ लोग इंतज़ार कर रहे हैं। एक माँ की बेटी की शादी है। यह लाल चुनरी उसी के लिए है।"

बुज़ुर्ग महिला की आँखों में चमक आ गई। उसने हरीश के सिर पर हाथ रखा।

"बेटा, तू बोझ नहीं उठा रहा। तू पूरे पहाड़ की ज़िन्दगी उठा रहा है। जा, भगवान तेरे साथ है।"

हरीश ने उसके पैर छुए। फिर कंडी उठाई। और चल पड़ा।

6. शाम का सफर

दिन ढलने लगा था। सूरज अब पहाड़ों के पीछे जा रहा था। आसमान में लालिमा फैल गई थी। देवदार के पेड़ सुनहरे दिख रहे थे।

हरीश के पैरों में दर्द था। कंधे सूज गए थे। पीठ में ऐंठन थी। पर वह रुका नहीं। उसे पता था अब ज़्यादा दूर नहीं है। बस दो-तीन किलोमीटर और।

वह चलता रहा। धीरे-धीरे, डगमगाते कदमों से, पर चलता रहा।

अचानक उसे याद आया वह भी कभी बच्चा था। उसके माता-पिता भी थे. वह भी उसी गाँव के एक छोटे-से घर में पला-बढ़ा था। उसके पिता भी ढाकर थे। वह भी बीस साल तक सामान ढोते रहे। फिर एक दिन रास्ते में दिल का दौरा पड़ा और वह वहीं गिर गए। कंडी समेत।

हरीश ने उस दिन ठान लिया था वह यही काम करेगा। अपने पिता की तरह गाँव वालों के लिए, लोगों के लिए, उन उम्मीदों के लिए जो उसकी कंडी से बँधी होती थीं।

7. गाँव पहुँचना

शाम ढल चुकी थी। अँधेरा घिरने लगा था। तभी दूर से कुछ रोशनी दिखी गाँव की।

हरीश के चेहरे पर मुस्कान आ गई। उसने आखिरी ताकत लगाकर कदम बढ़ाए।

जैसे ही वह गाँव के पास पहुँचा, बच्चों ने उसे देख लिया। वह दौड़ पड़े

"ढाकर आ गया! ढाकर आ गया!"

पूरे गाँव में खुशी की लहर दौड़ गई। लोग अपने-अपने घरों से बाहर निकल आए। औरतें मुस्कुरा रही थीं, बच्चे उछल रहे थे, बूढ़े आशीर्वाद दे रहे थे।

क्योंकि उसके साथ ही शहर की ज़रूरतें और खुशियाँ आती थीं। नमक, तेल, गुड़, कपड़ा, दवा सब कुछ। वह सिर्फ सामान नहीं लाता था, वह पूरे गाँव की जीवन-रेखा था।

हरीश ने कंडी उतारी। उसके कंधों पर रस्सी के गहरे निशान थे, खून के धब्बे थे। पर उसने किसी को नहीं दिखाया। वह बस मुस्कुराया।

8. वह चुनरी

हरीश ने सामान निकालना शुरू किया। हर परिवार का सामान अलग-अलग रखा। लोग लेते गए, धन्यवाद देते गए।

फिर वह उस माँ के घर पहुँचा जिसने चुनरी मंगाई थी।

उसने कंडी से वह लाल चुनरी निकाली। बिल्कुल साफ, बिल्कुल नई, बिल्कुल सुंदर।

माँ ने काँपते हाथों से चुनरी ली। उसे खोला। देखा। फिर अपने सीने से लगा लिया।

उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

"बेटा, अगर तू न होता... तो मेरी बेटी की शादी अधूरी रह जाती। यह चुनरी उसके सपनों की चुनरी थी। उसने छह महीने से यह चुनरी माँगी थी। पर शहर से कैसे आती ? सड़क नहीं है, दुकान नहीं है। और तू... तू आ गया। तूने मेरी बेटी के सपने पूरे कर दिए।"

हरीश चुप रहा। उसकी आँखों में भी नमी थी। पर वह रोया नहीं। उसने बस मुस्कुराकर कहा

"माँ, यह मेरा काम है।"

"नहीं बेटा, यह सिर्फ काम नहीं है। यह सेवा है। तू भगवान है हम सबके लिए।"

हरीश ने उसके पैर छुए। फिर वहाँ से चला गया।

9. रात का आसमान

रात को वह उसी गाँव में ठहर गया। गाँव वालों ने उसे खाना खिलाया, आराम करने की जगह दी।

वह बाहर आँगन में बैठ गया। थका हुआ शरीर, पर मन हल्का था।

आसमान में लाखों तारे चमक रहे थे। चाँद निकला था पूरा गोल, चाँदी जैसा चमकता। उसकी रोशनी में पूरा गाँव नहा रहा था। देवदार के पेड़ हवा में झूम रहे थे, और दूर कहीं खोह नदी की आवाज़ आ रही थी कल-कल, कल-कल।

हरीश सोच रहा था

"मैं क्या हूँ ? बस एक ढाकर। एक मज़दूर। एक सामान ढोने वाला। पूरे दिन पसीना बहाता हूँ, कंधे फट जाते हैं, पैरों में छाले पड़ जाते हैं। क्या मैं कुछ और हूँ ?"

तभी उसके पास एक बुज़ुर्ग आकर बैठ गए। वही, जिन्होंने दिन में उसे पानी पिलाया था ? नहीं, यह कोई और थे। गाँव के सबसे बुज़ुर्ग दादा जी, जिनकी उम्र सत्तर साल रही होगी।

"बेटा, क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नहीं दादा। बस यूँ ही।"

"मैं तेरा मन पढ़ सकता हूँ बेटा। तू सोच रहा है मैं क्या हूँ ?"

हरीश चौंका। "कैसे पता चला ?"

दादा जी मुस्कुराए। "बेटा, मैं सत्तर साल से यह पहाड़ देख रहा हूँ। मैंने हज़ारों ढाकर देखे हैं। तुझसे पहले तेरे बाप को देखा, तेरे दादा को देखा। सब एक जैसे होते हो। सब यही सोचते हो। पर सुन"

उन्होंने हरीश के कंधे पर हाथ रखा।

"बेटा, तू बोझ नहीं उठाता। तू पूरे पहाड़ की जिंदगी उठाता है। तू उन लोगों तक रोटी पहुँचाता है जो खुद नहीं आ सकते। तू उन माँओं तक चुनरी पहुँचाता है जो शादी का सपना देखती हैं। तू उन बच्चों तक किताबें पहुँचाता है जो पढ़ना चाहते हैं। तू इस पहाड़ की रगों में दौड़ने वाला खून है।"

हरीश की आँखों से आँसू बहने लगे। इस बार उसने नहीं रोके।

"धन्यवाद दादा। आज पहली बार किसी ने मुझे बताया कि मैं क्या हूँ।"

"बेटा, तू एक ढाकर है। और ढाकर इस पहाड़ की पीठ है। जैसे पीठ के बिना शरीर खड़ा नहीं रह सकता, वैसे ही ढाकर के बिना यह पहाड़ खड़ा नहीं रह सकता।"

10. अगली सुबह

सुबह हुई। सूरज की पहली किरण पहाड़ों पर पड़ी। पक्षी गाने लगे। ओस की बूँदें पत्तों पर मोतियों की तरह चमक रही थीं।

हरीश जल्दी उठा। उसने कंडी तैयार की। अब उसमें उतना सामान नहीं था बस कुछ खाली बोरियाँ, कुछ पुराने सामान, और उन लोगों का प्यार जो उसने कल रात महसूस किया था।

गाँव वाले उसे छोड़ने आए। बच्चे दौड़े आए। औरतें मुस्कुराई। वह माँ फिर आई उसकी आँखों में वही चमक थी, पर अब आँसू नहीं थे।

"बेटा, यह ले। तेरे लिए।"

उसने उसे एक पोटली दी उसमें रोटियाँ थीं,

"माँ, यह क्या ?"

"तेरे सफर के लिए बेटा। और यह..."

उसने एक छोटी-सी लाल डोरी निकाली।

"यह मेरी बेटी की शादी की डोरी है। इसे रखना। यह तुझे हमेशा याद दिलाएगी तू सिर्फ सामान नहीं ढोता, तू रिश्ते ढोता है, उम्मीदें ढोता है, जीवन ढोता है।"

हरीश ने डोरी को संभालकर रखा। फिर कंडी उठाई। एक गहरी साँस ली। और चल पड़ा।

11. वापसी का रास्ता

अब वापसी का रास्ता था। उतना ही कठिन, उतना ही लंबा। पर हरीश के कदम पहले से मज़बूत थे। उसकी पीठ सीधी थी। उसकी आँखों में एक नई चमक थी।

वह चलता रहा। उसी रास्ते पर, उन्हीं पत्थरों पर, उन्हीं मोड़ों पर। पर अब उसे रास्ता बोझिल नहीं लग रहा था। हर पत्थर उसे कुछ कह रहा था, हर पेड़ उसे आशीर्वाद दे रहा था, हर हवा का झोंका उसे सहला रहा था।

दोपहर तक वह उसी मोड़ पर पहुँचा, जहाँ कल उस बुज़ुर्ग महिला ने उसे पानी पिलाया था। वह आज भी वहाँ थी। जैसे उसका इंतज़ार कर रही हो

"आ गए बेटा ?"

"हाँ माँ।"

"सब ठीक हुआ ?"

"सब ठीक हुआ माँ। वह चुनरी पहुँच गई। शादी होगी।"

बुज़ुर्ग महिला ने उसे देखा। उसकी आँखों में गर्व था।

"बेटा, मुझे पता था। तू पहुँचा देगा। तू हमेशा पहुँचाता है।"

हरीश ने उसके पैर छुए। फिर आगे बढ़ गया।

12. शाम को दुगड्डा

शाम ढलते-ढलते हरीश दुगड्डा लौट आया।

उसने कंडी उतारी। सामान खाली कर दिया। दुकानदार ने उसके पैसे दिए। हरीश ने गिने। पैसे बहुत नहीं थे, पर उसे कोई गिला नहीं था।

वह अपने घर लौटा। उस छोटे-से घर में, जहाँ कोई उसका इंतज़ार नहीं करता था। उसने चूल्हा जलाया। खाना बनाया। खाया।

फिर वह बाहर आँगन में बैठ गया। वही आसमान, वही तारे, वही चाँद। पर आज उसे सब अलग लग रहा था।

उसने वह लाल डोरी निकाली। उसे देखा। फिर उसे अपने हाथ में बाँध लिया।

"यह डोरी मुझे याद दिलाएगी मैं सिर्फ सामान नहीं ढोता। मैं उम्मीदें ढोता हूँ, मैं रिश्ते ढोता हूँ, मैं जीवन ढोता हूँ। मैं एक ढाकर हूँ। और ढाकर इस पहाड़ की पीठ है।"

13. उपसंहार

हरीश ढाकर आज भी वही काम करता है। रोज़ सुबह चार बजे उठता है, कंडी कसता है, और पहाड़ के उन गाँवों तक सामान पहुँचाता है जहाँ सड़क नहीं पहुँची है।

उसके कंधों पर अब और भी निशान हैं, पीठ और भी झुक गई है, पर उसके कदम आज भी उतने ही मज़बूत हैं। क्योंकि उसे पता है उसके इंतज़ार में कई लोग हैं, कई परिवार हैं, कई उम्मीदें हैं।

और हर बार, जब वह किसी गाँव में पहुँचता है, बच्चे दौड़ते हैं

"ढाकर आ गया! ढाकर आ गया!"

उसके चेहरे पर मुस्कान आ जाती है। वह जानता है यही उसकी पहचान है यही उसकी ताकत है। यही उसका जीवन है।

14. संदेश

हर कठिन रास्ते पर चलने वाला छोटा नहीं होता कभी-कभी वही लोग समाज की असली ताकत होते हैं, जो चुपचाप दूसरों का भार उठाते हैं।

ढाकर सिर्फ सामान नहीं ढोता, वह रिश्ते ढोता है, उम्मीदें ढोता है, जीवन ढोता है। वह इस पहाड़ की पीठ है, उसकी रगों में दौड़ने वाला खून है।

जय हो ऐसे हर ढाकर की, जो चुपचाप, बिना शोर-शराबे के, इस पहाड़ को ज़िंदा रखे हुए है।

अतुल नैथानी

ढोल की आखिरी थाप – पहाड़ झूम उठा
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक मार्मिक कहानी)

नोटः यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। गढ़वाल के पहाड़ों में लुप्त होती परंपराओं और ढोल-दमाऊँ की पुरानी विरासत पर आधारित यह एक भावनात्मक प्रस्तुति है।

1. पहाड़ का वो गाँव

दुगड्डा से थोड़ा ऊपर, जहाँ बादल घरों से होकर गुजरते थे, वहाँ एक छोटा-सा गाँव था नाम था ढोलकिया गाँव।

नाम था तो ढोलकिया, पर असल में यह नाम किसी ने रखा नहीं था। यह नाम तो बस पड़ गया था क्योंकि यहाँ हर घर में कोई न कोई ढोल बजाना जानता था। यहाँ की मिट्टी में ढोल की थाप बसती थी, हवा में उसकी गूँज थी, और हर त्योहार, हर शादी, हर उत्सव की शुरुआत ढोल-दमाऊँ की थाप से होती थी।

चारों तरफ देवदार के ऊँचे-ऊँचे पेड़, सीढ़ीदार खेत जो पहाड़ियों की गोद में बसे थे, और बीच में बहती एक पतली-सी धारा जिसका पानी बर्फ की तरह ठंडा और शहद की तरह मीठा था। सुबह होते ही पक्षियों का संगीत शुरू हो जाता, और शाम ढलते ही घरों में दीप जलने लगते।

पर इस गाँव की सबसे बड़ी पहचान थी उसका ढोल।

और उस ढोल की धड़कन था भीम सिंह ढोली।

2. भीम सिंह ढोली

भीम सिंह कोई साधारण आदमी नहीं था। वह इस गाँव की आत्मा था।

उम्र थी उसकी करीब पचास साल। सफेद बाल, सफेद दाढ़ी, पर आँखों में वही चमक जो सिर्फ उन लोगों में होती है जो अपनी कला से प्यार करते हैं उसके हाथ वे हाथ, जिन्होंने पचास साल से भी ज़्यादा समय तक ढोल की थाप दी थी उन हाथों में एक अजीब-सी ताकत थी, एक अलग ही जादू।

उसके पिता ढोली थे, उसके दादा ढोली थे, उसके परदादा भी ढोली थे। उसने ढोल बजाना अपने पिता से सीखा, उन्होंने अपने पिता से। कितनी पीढ़ियाँ बीत गईं, कोई नहीं जानता। पर इतना ज़रूर था कि इस गाँव में जब भी कोई खुशी होती, सबसे पहले भीम सिंह के घर जाते। वह अपना ढोल लेकर आता, और फिर...

ढम-ढम-ढम... ढम-ढम-ढम...

बस फिर क्या था। पूरा गाँव झूम उठता। बच्चे नाचते, बूढ़े तालियाँ बजाते, औरतें गीत गातीं। लगता था जैसे पूरा पहाड़ उस थाप पर थिरक रहा हो।

भीम सिंह की उँगलियों में जैसे पहाड़ की धड़कन बसती थी। जब वह ढोल बजाता, तो ऐसा लगता जैसे पहाड़ खुद बोल रहा हो। उसकी थाप में सुख था, दुख था, प्यार था, विरह था सब कुछ था।

3. समय बदला

पर समय बदला।

धीरे-धीरे गाँव में बदलाव आने लगे। सड़कें बनीं। शहर से नई चीज़ें आने लगीं। मोबाइल फोन आ गए। टीवी आ गए। और सबसे बड़ी चीज़ आई - DJ।

शादी-ब्याह में अब ढोल की जगह तेज़ आवाज़ वाले गाने बजने लगे। लोगों को अब भीम सिंह के ढोल की ज़रूरत नहीं रही। क्योंकि DJ में तो हर तरह का गाना था, हर तरह की धुन। बस पैसे दो और मौज करो।

भीम सिंह धीरे-धीरे किनारे होता गया।

पहले तो उसे लगा यह कुछ दिनों की बात है। लोग फिर ढोल पर आएँगे। पर ऐसा नहीं हुआ। दिन बीते, महीने बीते, साल बीत गए। अब तो कभी-कभार ही कोई बुलाता था। वह भी सिर्फ इसलिए कि परंपरा निभानी है, या कि कोई बूढ़ा मना रहा है।

भीम सिंह का ढोल अब घर के कोने में पड़ा रहता। कभी-कभार वह उसे निकालता, साफ करता, उससे बातें करता।

"बूढ़े हो गए हम दोनों... अब किसी को हमारी ज़रूरत नहीं रही।"

ढोल चुप रहता। पर उसकी चुप्पी में भी एक थाप होती दर्द की, उदासी की, उस अकेलेपन की जो दोनों को महसूस होता था

4. वह शादी

एक दिन गाँव में शादी थी। भीम सिंह ने सोचा शायद इस बार बुला लें। उसने अपना पुराना ढोल निकाला। उसे अच्छी तरह साफ किया। नए चमड़े की पट्टियाँ लगाईं। घंटों उसे ठीक किया। फिर आँखों में एक उम्मीद लिए घर से निकला।

धीरे-धीरे वह शादी वाली जगह पहुँचा। दूर से ही आवाज़ सुनाई दे रही थी तेज़, कर्कश, बेसुरी। DJ बज रहा था। इतनी तेज़ आवाज़ कि कान के पर्दे फटे जा रहे थे।

भीम सिंह ने करीब जाकर देखा। बड़ा-सा DJ सेट लगा था। रंग-बिरंगी लाइटें चमक रही थीं। युवा लड़के-लड़कियाँ उस पर नाच रहे थे अपने ढंग से, अपनी चाल से। कोई ढोल की थाप पर नहीं, बस बेसुरे गानों पर।

किसी ने उसकी तरफ देखा तक नहीं।

भीम सिंह वहीं एक कोने में जाकर बैठ गया। ढोल अपने पास रखा। वह देखता रहा उसी जगह, जहाँ कभी उसके ढोल पर पूरा गाँव नाचता था, आज अजनबी-सी आवाज़ों पर लोग पागल हो रहे थे।

उसकी आँखों में आँसू थे, पर वह रोया नहीं। वह बस देखता रहा।

5. वह बच्चा

तभी एक छोटा बच्चा वहाँ आया। उम्र होगी कोई छह-सात साल। उसने भीम सिंह को देखा। फिर उसका ढोल देखा। आँखों में कुतूहल था।

वह पास आया। धीरे से ढोल को छुआ। फिर पूछा

"दादा, ये क्या है ?"

भीम सिंह ने उसे देखा। बच्चे की आँखों में वही चमक थी, जो कभी उसके अपने बचपन में थी। वह मुस्कुराया।

"ये ढोल है बेटा।"

"ढोल क्या होता है ?"

"ढोल... ढोल हमारी परंपरा है बेटा। पहले इसी पर पूरा गाँव नाचता था। शादी हो, त्योहार हो, कोई खुशी हो सबसे पहले ढोल बजता था।"

"अब क्यों नहीं बजता ?"

भीम सिंह की आवाज़ भर्रा गई। उसने बच्चे के सिर पर हाथ रखा।

"बेटा, अब लोगों के पास वक्त नहीं है... अपनी जड़ों को सुनने का। अब सबको DJ चाहिए, तेज़ आवाज़ चाहिए। ढोल की थाप में दिल है, पर लोगों को दिल की नहीं, सिर्फ शोर की ज़रूरत है।"

बच्चा कुछ समझा नहीं, पर उसने ढोल को फिर से छुआ। उसकी उँगलियाँ उस पर फिरीं।

"दादा, यह तो बहुत सुंदर है। आप इसे बजा सकते हैं ?"

भीम सिंह ने उसे देखा। एक बच्चा, जो ढोल की सुंदरता को समझ रहा था जो DJ के शोर में भी इस चीज़ को पहचान रहा था।

"हाँ बेटा, बजा सकता हूँ।"

"तो बजाओ न।"

भीम सिंह मुस्कुराया। "अभी नहीं बेटा। अभी लोगों को इसकी ज़रूरत नहीं है।"

6. अंधेरा

रात गहराने लगी। शादी का माहौल गरमा गया था। लोग नाच रहे थे, गा रहे थे, खा-पी रहे थे। DJ की आवाज़ और तेज़ हो गई थी।

तभी अचानक...

बत्ती चली गई। पूरे गाँव में अंधेरा छा गया। DJ बंद हो गया। लाइटें बंद हो गईं। माइक बंद हो गया। बस एक पल में पूरा माहौल शांत हो गया।

लोग असहज होकर इधर-उधर देखने लगे। कुछ समझ नहीं आ रहा था। अँधेरे में कुछ दिख नहीं रहा था। बच्चे डर गए। औरतें घबरा गईं। मर्द इधर-उधर भागने लगे। लालटेन जला के उजाला हुआ

पूरा गाँव सन्न था।

तभी, उस सन्नाटे में, एक आवाज़ आई

ढम... ढम... ढम...

भीम सिंह उठा था। उसने अपना ढोल कंधे पर टांगा था। और अँधेरे में, बिना किसी रोशनी के, बिना किसी माइक के, उसने थाप देना शुरू किया।

पहले हल्की-हल्की, धीमी-धीमी। फिर तेज़, फिर गूँजती हुई। उसकी थाप पूरे गाँव में फैलने लगी। पहाड़ों से टकराकर लौटने लगी। देवदार के पेड़ उस थाप पर झूमने लगे। दूर खोह नदी भी उस थाप पर थिरकने लगी।

जैसे पहाड़ खुद बोल उठा हो।

7. वह नज़ारा

लोग रुक गए। सब उस थाप की तरफ देखने लगे। एक-एक करके वे उसके पास आने लगे। बच्चे, बूढ़े, जवान, औरतें सब।

ढम-ढम-ढम... ढम-ढम-ढम...

भीम सिंह की आँखें बंद थीं। वह खो गया था अपनी दुनिया में। उसकी उँगलियाँ अपने-आप थाप दे रही थीं। उसका पूरा शरीर ढोल के साथ झूम रहा था।

और फिर वह हुआ, जिसकी किसी ने उम्मीद नहीं की थी।

लोग नाचने लगे।

पहले एक-दो, फिर दस-बीस, फिर पूरा गाँव। बच्चे उछल रहे थे, बूढ़े तालियाँ बजा रहे थे, औरतें पारंपरिक गीत गा रही थीं। वही गीत, जो उनकी दादी-नानी गाती थीं। वही नाच, जो उनके बाप-दादा नाचते थे।

बुज़ुर्गों की आँखें भर आईं। उन्हें लगा, जैसे वह पुराना समय लौट आया हो जब पूरा गाँव एक साथ नाचता था, एक साथ हँसता था, एक साथ जीता था।

भीम सिंह की आँखों में आँसू थे। पर यह आँसू खुशी के थे। वह देख रहा था उसका ढोल, उसकी थाप, उसकी परंपरा आज फिर से ज़िंदा हो गई थी

8. आखिरी थाप ?

रात भर ढोल बजता रहा। सुबह जब सूरज निकला, तब कहीं जाकर लोग घर गए। पर भीम सिंह उसी जगह बैठा रहा। थका हुआ, पर संतुष्ट।

उसने ढोल को देखा। उस पर हाथ फेरा।

"बूढ़े, आज तू फिर से ज़िंदा हो गया।"

तभी वह बच्चा फिर आया वही, जिसने शाम को सवाल पूछा था।

"दादा, बहुत अच्छा बजाते हो आप। मुझे भी सिखाओगे ?"

भीम सिंह ने उसे देखा। उसकी आँखों में वही चमक, वही उत्सुकता, वही प्यार।

"तू सीखना चाहता है ?"

"हाँ दादा। मैं भी ऐसे ही बजाना चाहता हूँ।"

भीम सिंह की आँखों से आँसू बह निकले। उसने बच्चे को गले से लगा लिया।

"बेटा, तूने आज मेरा ढोल बचा लिया।"

9. नई शुरुआत

अगली सुबह गाँव के कुछ और बच्चे भी आ गए। उन्होंने भीम सिंह से कहा

"दादा, हमें भी ढोल बजाना सिखाओ।"

भीम सिंह मुस्कुराया। उसने अपना ढोल निकाला। सब बच्चों को बिठाया और सिखाना शुरू किया

"देखो बेटा, ढोल सिर्फ बजाने की चीज़ नहीं है। यह हमारी संस्कृति है, हमारी पहचान है। इसकी हर थाप में हमारे पूर्वजों की आवाज़ है। इसे समझकर बजाना।"

बच्चों ने बड़ी लगन से सीखा। धीरे-धीरे और बच्चे आते गए। फिर युवा भी आने लगे। कुछ ही महीनों में गाँव में फिर से ढोल की थाप गूँजने लगी

10. गाँव का नाम

अब उस गाँव का नाम ढोलकिया सच में सार्थक हो गया था।

हर शाम, जब सूरज ढलता, बच्चे भीम सिंह के घर के बाहर इकट्ठा होते। ढोल लेकर आते। और भीम सिंह उन्हें सिखाता। थाप दर थाप, ताल दर ताल।

और जब कभी गाँव में कोई शादी होती, तो अब दो चीज़ें होतीं पहले ढोल बजता, फिर DJ। पर अब लोग ढोल का भी उतना ही इंतज़ार करते, जितना DJ का।

भीम सिंह अब और खुश रहता। उसकी आँखों में वह उदासी नहीं थी। उसे लगता, जैसे उसने अपनी ज़िन्दगी का सबसे बड़ा काम कर लिया।

11. वह दिन

एक दिन भीम सिंह ने बच्चों को बुलाया। सबको अपने पास बिठाया। फिर बोला

"बेटों, आज मैं तुम सबको एक कहानी सुनाता हूँ।"

सब चुप हो गए।

"यह ढोल मेरे पिता ने मुझे दिया था। उनके पिता ने उन्हें दिया था। कितनी पीढ़ियाँ बीत गईं, पता नहीं। पर आज यह ढोल तुम्हारे हाथों में सुरक्षित है मैं चाहता हूँ कि तुम इसे हमेशा बजाते रहो। कभी मत भूलना यह सिर्फ ढोल नहीं, यह हमारी पहचान है।"

बच्चों की आँखें नम हो गईं। उन्होंने भीम सिंह के पैर छुए।

"दादा, हम कभी नहीं भूलेंगे।"

12. आखिरी थाप

उस रात भीम सिंह ने आखिरी बार ढोल बजाया।

पूरा गाँव इकट्ठा हुआ। बच्चे, बूढ़े, जवान, औरतें सब। उसने घंटों बजाया हर थाप में अपनी ज़िन्दगी झोंक दी। लोग नाचते रहे, गाते रहे, झूमते रहे।

जब आखिरी थाप दी, तो ऐसा लगा जैसे पूरा पहाड़ झूम उठा हो। फिर वह मुस्कुराया। अपने बच्चों को देखा। और चुपचाप वहाँ से चला गया।

अगली सुबह वह नहीं उठा। वह चुपचाप सो गया हमेशा के लिए।

पर उसका ढोल नहीं मरा। आज भी उस गाँव में, हर शाम, बच्चे इकट्ठा होते हैं। ढोल लेकर आते हैं। और भीम सिंह को याद करते हैं।

उनकी याद में वह थाप देते हैं वही थाप, जो उन्होंने सिखाई थी।

ढम-ढम-ढम... ढम-ढम-ढम...

13. उपसंहार

आज भी उस गाँव का नाम ढोलकिया है। और आज भी जब कोई शादी होती है, तो सबसे पहले ढोल बजता है। DJ बाद में आता है।

लोग कहते हैं "यह भीम सिंह की देन है। उसने हमें हमारी जड़ों से जोड़ा।"

बच्चे कहते हैं "हम भीम सिंह दादा की तरह ढोल बजाएँगे।"

और जब कभी कोई पूछता है "यह ढोल कब तक बजेगा ?" तो बच्चे मुस्कुराकर कहते हैं

"जब तक यह पहाड़ है, जब तक यह गाँव है, जब तक हम हैं यह ढोल बजता रहेगा। क्योंकि यह सिर्फ ढोल नहीं, यह हमारी पहचान है।"

14. संदेश

परंपराएँ तब तक नहीं मरतीं, जब तक कोई उन्हें याद रखने और आगे बढ़ाने वाला हो। अपनी जड़ों की आवाज़ सुनो वही हमारी असली पहचान है।

ढोल की थाप सिर्फ एक आवाज़ नहीं, यह हमारे पूर्वजों की आवाज़ है, हमारी संस्कृति की धड़कन है, हमारे अस्तित्व की पहचान है।

जब तक यह थाप बजती रहेगी, हम ज़िंदा रहेंगे। हमारा गाँव ज़िंदा रहेगा। हमारा पहाड़ ज़िंदा रहेगा।

अतुल नैथानी

सूखती धारा – गधेरा
(पानी के खत्म होने का दर्द और एक विधवा के जीवन का संघर्ष)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। गढ़वाल के पहाड़ों में पानी के संकट और एक विधवा के जीवन-संघर्ष पर आधारित यह एक मार्मिक प्रस्तुति है

1. गंगा का गाँव

दुगड्डा से ऊपर, जहाँ सड़क पहाड़ी से सटकर निकलती है, एक छोटा-सा गाँव था नाम था पनियाली गाँव।

नाम था तो पनियाली यानी पानी वाला गाँव। कभी यहाँ पानी की कोई कमी नहीं थी। चारों तरफ देवदार के घने जंगल, और घर के पास एक छोटी-सी धारा बहती थी। सुबह होते ही औरतें धारा पर जातीं, पानी भरतीं, गीत गातीं, और हँसती-बोलती वापस लौटतीं।

पर अब वैसा नहीं था।

अब वह धारा सूख रही थी। देवदार के पेड़ कट गए थे। जंगल पतले हो गए थे। और उनके साथ-साथ पानी भी कम होता जा रहा था। जो धारा कभी बारहों महीने बहती थी, वह अब सिर्फ बरसात में ही ज़िंदा होती थी। और बरसात भी अब पहले जैसी नहीं रही।

उसी गाँव के एक कोने में, एक छोटा-सा घर था। पत्थर और मिट्टी से बना, छत पर पठाल और आँगन में तुलसी का पौधा। उस घर में रहती थी गंगा

2. गंगा

गंगा कोई साधारण महिला नहीं थी। उम्र थी उसकी करीब पचास साल। काले-साँवले रंग की, पतली-दुबली, पर आँखों में एक अजीब-सी चमक जो सिर्फ उन लोगों में होती है जिन्होंने ज़िन्दगी में बहुत कुछ झेला हो।

वह विधवा थी।

पन्द्रह साल पहले उसका पति दीवान सिंह जंगल में लकड़ी काटने गया था, वहीं उसे दिल का दौरा पड़ा और वह गिर पड़ा। जब लोग उसे ढूँढने गए, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। गंगा ने उस दिन से सिर्फ अपना पति नहीं खोया, उसने अपनी ज़िन्दगी का सहारा खो दिया।

उसके दो बच्चे थे एक बेटा और एक बेटी। बेटा, राजू, उस समय दस साल का था, और बेटी, चुन्नी, सात साल की। गंगा ने अकेले ही उन्हें पाला। खेतों में काम किया, मजदूरी की, कभी किसी के घर में झाड़ू-पोछा किया, कभी बच्चों को पढ़ाया। उसने कभी किसी से मदद नहीं माँगी। वह चुपचाप संघर्ष करती रही।

पर अब एक और संकट आ खड़ा हुआ था पानी का संकट।

3. वह धारा

गंगा के घर से थोड़ी दूर पर एक छोटी-सी धारा बहती थी। वह धारा उस गाँव की जीवन-रेखा थी। उसी से पूरे गाँव को पानी मिलता था। उसी पर गाँव की औरतें इकट्ठा होती थीं। वही जगह थी जहाँ हर सुबह गीत गूँजते थे, हँसी गूँजती थी, बातें होती थीं।

गंगा को वह धारा बहुत प्यारी थी। वह हर सुबह वहाँ जाती। पानी भरती। अपने पति की याद में उस धारा के किनारे बैठ जाती। कभी-कभी उससे बातें करती

"धारा, तू बहती रह। मेरे पति भी कहते थे जब तक तू बहेगी, यह गाँव बसा रहेगा।"

धारा बहती थी कल-कल, कल-कल जैसे उसकी बात का जवाब दे रही हो।

पर पिछले कुछ सालों से धारा का पानी कम होने लगा था। पहले जहाँ पूरी धारा में पानी बहता था, वहाँ अब सिर्फ एक पतली-सी धार रह गई थी। गर्मियों में तो वह भी सूख जाती।

4. सूखती धारा

वह साल और भी बुरा था।

बारिश कम हुई थी। सर्दियों में बर्फ़ नहीं गिरी थी। और जैसे-जैसे गर्मी बढ़ी, धारा का पानी घटता गया। पहले पूरी धारा में पानी था, फिर आधी में, फिर एक कोने में, फिर बस टपकता हुआ।

गाँव वाले परेशान हो गए। पीने का पानी तक नहीं बचा था। लोग दूर-दूर से पानी लाने जाते दो किलोमीटर नीचे, जहाँ एक और धारा बहती थी। पर वहाँ भी पानी कम था।

गंगा के लिए यह और भी मुश्किल था। उसके बच्चे अब बड़े हो गए थे। राजू पढ़-लिखकर शहर चला गया था। चुन्नी की शादी हो गई थी। गंगा अब अकेली थी। उसे अकेले ही पानी लाने जाना पड़ता था वह भी दो किलोमीटर दूर, उबड़-खाबड़ रास्ते पर, सिर पर घड़ा रखे।

उसकी पीठ में दर्द था। पैरों में छाले थे। पर वह रोज़ जाती। क्योंकि पानी के बिना तो जीना मुश्किल था।

5. एक सुबह

एक दिन सुबह गंगा हमेशा की तरह धारा पर गई। उसने सोचा शायद आज थोड़ा पानी मिल जाए।

पर जब वह वहाँ पहुँची, तो उसके पैरों तले ज़मीन खिसक गई।

धारा सूखी थी। बिल्कुल सूखी। एक भी बूँद पानी नहीं था। सिर्फ सूखे पत्थर थे, और उन पर पड़ी धूल।

गंगा वहीं बैठ गई। उसने उन सूखे पत्थरों को छुआ। उन पत्थरों पर कभी पानी की लहरें थीं, कभी उसकी सहेलियाँ गीत गाती थीं, कभी उसके पति यहाँ पानी पीते थे। आज सब सूना था।

उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

"धारा... तू भी छोड़ गई मुझे ?"

धारा चुप थी। बस हवा में पत्तों की सरसराहट थी जैसे वह भी रो रही हो।

6. दो किलोमीटर का सफर

अब गंगा को रोज़ दो किलोमीटर नीचे जाना पड़ता था, जहाँ एक और छोटी-सी नदी थी।

वह सुबह चार बजे उठती। सिर पर घड़ा रखती, और चल पड़ती। रास्ता बहुत कठिन था पत्थरों से भरा, कहीं फिसलन भरा, कहीं इतना संकरा कि सिर्फ एक पैर रखने जितनी जगह। उसकी उम्र अब और नहीं झेल सकती थी यह सब। पर उसे करना पड़ता था।

पानी लाने के बाद वह चूल्हा जलाती, खाना बनाती, और फिर बैठ जाती। दिन भर बैठी रहती। बस छत की तरफ देखती, या उस सूखी धारा की तरफ

उसके बच्चे कभी-कभार फोन कर देते थे। राजू कहता "माँ, तुम यहाँ आ जाओ। यहाँ सब है, पानी है, बिजली है।"

पर गंगा नहीं आ सकती थी। वह इस गाँव को नहीं छोड़ सकती थी। यह उसके पति का गाँव था, यहाँ उसकी जड़ें थीं। यहाँ वह धारा थी, जो कभी बहती थी, और जिसके सूखने का दर्द वह रोज़ महसूस करती थी।

7. बेटे का फोन

एक दिन राजू का फोन आया।

"माँ, कैसी हो ?"

"ठीक हूँ बेटा।"

"पानी कैसे आ रहा है ?"

गंगा चुप रही। वह राजू को नहीं बताना चाहती थी कि उसे रोज़ दो किलोमीटर जाना पड़ता है। उसे डर था कि कहीं राजू उसे वहाँ बुलाने की ज़िद न करने लगे।

"ठीक है बेटा। धारा है न।"

"धारा ? वह तो सूख गई होगी। मैंने सुना है, वहाँ पानी का संकट है।"

"किसने सुना ? सब ठीक है।"

"माँ, मैं तुम्हारी आवाज़ से समझ सकता हूँ। तुम झूठ बोल रही हो।"

गंगा चुप हो गई। फिर धीरे से बोली

"बेटा, चिंता मत करो। मैं संभाल लूँगी।"

"माँ, तुम यहाँ आ जाओ। मेरे पास आ जाओ। यहाँ पानी है, सब है।"

"बेटा, मैं नहीं आ सकती। यह मेरा घर है। तुम्हारे पिता का घर है। यहाँ की मिट्टी में मेरी जान है। मैं इसे छोड़कर नहीं जा सकती।"

फोन कट गया। गंगा ने फोन रखा। फिर वह बाहर निकली। सूखी धारा के पास गई। वहाँ बैठ गई।

"धारा, तू बता क्यों सूख रही है तू ? क्यों मर रहा है यह गाँव ? क्यों मैं अकेली रह गई हूँ ?"

धारा चुप थी। बस हवा में पत्तों की सरसराहट थी।

8. वह दिन

वह दिन गर्मी का था। धूप इतनी तेज़ थी कि बाहर निकलना मुश्किल था। पर गंगा को पानी लाना था। उसने घड़ा उठाया। सिर पर रखा। और चल पड़ी।

रास्ता बहुत कठिन था। पसीना टपक रहा था। साँस फूल रही थी। पैर लड़खड़ा रहे थे। पर वह चलती रही।

तभी अचानक उसका पैर फिसला। वह गिर पड़ी। घड़ा गिरकर टूट गया। उसके पैर में चोट लगी, खून बहने लगा।

वह वहीं बैठ गई। दर्द से कराह रही थी। पर उससे ज़्यादा दर्द था टूटे घड़े का, बिखरे पानी का, उसके अकेलेपन का।

वह रोने लगी। फूट-फूटकर रोने लगी।

"क्यों ? क्यों मेरे साथ ऐसा हो रहा है ? मैंने क्या पाप किया है ? मेरा पति गया, मेरे बच्चे दूर चले गए, मेरी धारा सूख गई, मेरा घड़ा टूट गया। अब क्या बचा है मेरे पास ?"

उसके आँसू धरती पर गिर रहे थे। धरती उन्हें पी रही थी शायद पानी के लिए तरस रही थी।

9. मदद

तभी दूर से किसी ने आवाज़ दी।

"गंगा दीदी ?"

गंगा ने देखा उसकी पड़ोसन, मुन्नी, दौड़ी आ रही थी।

"दीदी, क्या हुआ ? गिर गईं ?"

गंगा ने कुछ नहीं कहा। बस रोती रही।

मुन्नी ने उसे उठाया। उसके पैर पर पट्टी बाँधी। और धीरे-धीरे उसे घर ले गई।

उस दिन मुन्नी ने उसके लिए पानी ला दिया। और अगले दिन भी, और उसके बाद भी। पर गंगा को यह अच्छा नहीं लगता था। वह किसी पर बोझ नहीं बनना चाहती थी।

एक दिन उसने मुन्नी से कहा "मुन्नी, तू मेरे लिए पानी मत लाया कर। मैं खुद ले लूँगी।"

"दीदी, तुम्हारे पैर में चोट है। और तुम अकेली हो। मेरे लिए बोझ नहीं हो तुमने मेरे बच्चे की जान बचाई थी, भूल गई ?"

गंगा को याद आया सालों पहले, मुन्नी का बच्चा बीमार पड़ गया था। गंगा ने रात-रात भर उसके पास बैठकर उसे दवा दी थी, पानी पिलाया था, और उसकी जान बचाई थी।

गंगा ने मुन्नी का हाथ पकड़ लिया। आँखों से आँसू बहने लगे।

"धन्यवाद मुन्नी।"

10. गाँव की पंचायत

कुछ दिनों बाद गाँव में पंचायत बुलाई गई। पानी के संकट पर बात करने के लिए।

सब लोग इकट्ठा हुए। बुज़ुर्ग, जवान, औरतें सब। गंगा भी गई। वह एक कोने में चुपचाप बैठ गई।

बहुत बातें हुईं। कोई कहता था सरकार से पानी की टंकी बनवानी चाहिए। कोई कहता था नल लगवाने चाहिए। कोई कहता था पुराने स्रोतों को साफ करना चाहिए।

तभी गंगा उठी। धीरे-धीरे, लाठी के सहारे। सबने उसकी तरफ देखा।

वह बोली

"मैं कुछ कह सकती हूँ ?"

"बोलो गंगा।"

"हम पानी की बात कर रहे हैं। सरकार से माँग कर रहे हैं। पर क्या हमने कभी सोचा हमने ही तो पहाड़ काटे, पेड़ काटे, जंगल खत्म किए। हमने ही तो धाराओं को नहीं बचाया। अब वे सूख रही हैं।"

सब चुप थे।

"मेरे पति कहते थे पहाड़ को मत काटो, नहीं तो पानी रूठ जाएगा। हमने नहीं माना। हमने पेड़ काटे, जंगल साफ किए। आज पानी रूठ गया है। अब किसे दोष दें ?"

गंगा की आँखों से आँसू बह रहे थे।

"मैं अकेली हूँ। मेरा कोई नहीं है। मेरे बच्चे दूर हैं। मेरा पति मर चुका है। मेरी धारा सूख चुकी है। पर मैं फिर भी यहाँ हूँ। क्योंकि यह मेरा घर है। और मैं चाहती हूँ कि मेरे बाद भी यह गाँव रहे, यहाँ पानी रहे।"

पूरी पंचायत में सन्नाटा था।

11. बदलाव की शुरुआत

उस दिन के बाद गाँव में बदलाव आना शुरू हुआ।

लोगों ने पेड़ काटना कम कर दिया। नए पेड़ लगाने शुरू किए। पुराने स्रोतों को साफ किया। और सबसे बड़ी बात उन्होंने पानी बचाना सीखा।

गंगा अब अकेली नहीं थी। गाँव के लोग उसके लिए पानी ला देते थे। कोई सुबह ला देता, कोई शाम को। वह अब दो किलोमीटर नहीं जाती थी।

पर वह रोज़ उस सूखी धारा के पास जाती। वहाँ बैठती। प्रार्थना करती

"हे भगवान, एक बार फिर यह धारा बहा दो। एक बार फिर इस गाँव में पानी लौटा दो।"

12. बारिश

उस साल बारिश अच्छी हुई। जंगल में हरियाली लौट आई। पेड़ों पर फिर से पत्ते आ गए। और एक दिन...

गंगा सुबह उठी। उसने कान लगाए। कोई आवाज़ आ रही थी। दूर से, धीमी-धीमी।

वह बाहर निकली। उस सूखी धारा के पास गई।

धारा बह रही थी।

पहले पतली-सी धार, फिर थोड़ी मोटी, फिर पूरी धारा में पानी। कल-कल, कल-कल वही आवाज़, जो सालों बाद सुनाई दी थी।

गंगा के आँखों से आँसू बहने लगे। वह घुटनों के बल बैठ गई। उसने धारा का पानी हाथ में लिया। उसे माथे से लगाया।

"धारा, तू लौट आई। तूने मेरी सुन ली।"

धारा बहती रही कल-कल, कल-कल जैसे कह रही हो, "मैं तुम्हें कभी नहीं भूली।"

13. उपसंहार

आज वह धारा फिर से बहती है। गंगा अब और बूढ़ी हो गई है। उसके बाल पूरी तरह सफेद हो गए हैं। उसकी पीठ और झुक गई है। पर वह रोज़ सुबह धारा पर जाती है। पानी भरती है। और फिर उसी पत्थर पर बैठ जाती है, जहाँ कभी उसके पति बैठा करते थे।

उसके बच्चे अब भी शहर में हैं। वह उनके पास नहीं गई। पर अब उसे अकेलापन नहीं लगता। उसके पास उसकी धारा है, उसका गाँव है, और उसकी यादें हैं।

गाँव वाले कहते हैं गंगा ने न सिर्फ अपना जीवन संघर्ष किया, उसने पूरे गाँव को पानी का महत्व सिखाया।

और गंगा कहती है "पानी सिर्फ पानी नहीं है। यह जीवन है। जब तक पानी रहेगा, यह गाँव रहेगा। और जब तक यह गाँव रहेगा, मैं रहूँगी।"

14. संदेश

पानी सिर्फ पानी नहीं है। यह जीवन की धारा है, यह हमारे अस्तित्व की नींव है।

जब धाराएँ सूखती हैं,

तो सिर्फ पानी नहीं सूखता,

उम्मीदें सूखती हैं,

सपने सूखते हैं,

पूरा गाँव सूख जाता है।

गंगा ने यही सिखाया संघर्ष चाहे कितना भी बड़ा हो, हार मत मानो। और पानी को बचाओ, क्योंकि पानी ही जीवन है।

अतुल नैथानी

नदी के उस पार – एक प्रेम कथा
(दुगड्डा के पहाड़ों से एक अमर प्रेम कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। गढ़वाल के पहाड़ों में बहती खोह नदी के किनारे बसे एक गाँव की यह मार्मिक प्रेम कहानी है।

1. खोह नदी के दो किनारे

दुगड्डा के पास, जहाँ पहाड़ियाँ एक-दूसरे से लिपटी हुई हैं और देवदार के पेड़ आसमान को छूने की कोशिश कर रहे हैं, वहाँ एक नदी बहती है खोह नदी।

बहुत सुंदर है यह नदी। दिन में जब सूरज की किरणें उसके पानी पर पड़ती हैं, तो वह चाँदी की तरह चमकती है। छोटे-छोटे पत्थर उसके पानी के नीचे दिखते हैं, और किनारे पर उगे बुरांश के फूल उसमें अपना प्रतिबिंब देखते हैं

पर इस नदी की एक खास बात थी इसके दो किनारे थे।

एक तरफ था गाँव छोटा-सा, पत्थर और मिट्टी के घरों वाला, जहाँ सुबह होते ही चूल्हे जलने लगते और शाम ढलते ही दीप जलने लगते।

दूसरी तरफ था एक और दुनिया। वहाँ भी एक गाँव था, पर उस गाँव तक जाने के लिए कोई पुल नहीं था, कोई सड़क नहीं थी। बस नदी थी और नदी के उस पार का गाँव।

दोनों गाँवों के लोग एक-दूसरे को दूर से देखते थे। कभी-कभी नदी के किनारे आते, हाथ हिलाते, पर पार नहीं जा पाते। क्योंकि बरसात में तो नदी इतनी उफान पर आ जाती थी कि उसे पार करना नामुमकिन था, और सूखे में भी रास्ता इतना कठिन था कि कोई जोखिम नहीं लेना चाहता था।

और इसी नदी के इस किनारे रहता था अतुल।

2. अतुल

अतुल उस गाँव का एक युवक था। उम्र थी उसकी करीब पच्चीस साल। शांत, कम बोलने वाला, पर दिल में गहरे भाव लिए। उसके पिता खेती करते थे, माँ घर संभालती थी। अतुल भी उनके साथ खेतों में काम करता, पर उसका मन कहीं और ही रमता था।

वह रोज़ सुबह जल्दी उठता। नदी के किनारे चला जाता। वहाँ एक बड़ा-सा पत्थर था नदी के बीचों-बीच। वह उस पत्थर तक जाता। और वहाँ खड़ा होकर... इंतज़ार करता।

किसका इंतज़ार ?

उस लड़की का, जो हर सुबह नदी के उस पार से पानी भरने आती थी।

गौरा।

3. गौरा

गौरा नदी के उस पार वाले गाँव में रहती थी। उम्र थी उसकी बाईस साल। बहुत सुंदर, बहुत सरल, और बहुत प्यारी। उसकी आँखों में पहाड़ी झरने की मासूमियत थी, और हँसी में बुरांश के फूलों की खुशबू।

हर सुबह वह पानी भरने नदी पर आती। मिट्टी का घड़ा सिर पर रखे, धीरे-धीरे उतरती पगडंडी से, और फिर नदी के किनारे आकर पानी भरती।

पर पानी भरते वक्त उसकी नज़र अक्सर उस पत्थर की तरफ उठ जाती, जहाँ अतुल खड़ा होता था। पहले तो वह शर्मा जाती, नज़रें चुरा लेती। फिर धीरे-धीरे... नज़रें मिलने लगीं।

एक दिन अतुल ने मुस्कुराकर देखा। गौरा ने भी मुस्कुरा दिया। बस, फिर क्या था। उस दिन से वह मुस्कान उनके बीच एक रिश्ता बन गई।

4. बिना शब्दों का रिश्ता

कोई शब्द नहीं थे उनके बीच। न कोई बातचीत, न कोई इकरार। बस वह पत्थर था नदी के बीचों-बीच जहाँ दोनों कभी-कभार खड़े हो जाते।

अतुल इस पार से उस पत्थर तक आता। गौरा उस पार से उस पत्थर तक आती। और फिर दोनों उस पत्थर पर खड़े होकर एक-दूसरे को देखते। बस देखते, घंटों देखते।

कभी-कभी हवा में हाथ हिलाते। कभी-कभी बस मुस्कुराते। पर कभी कुछ नहीं बोलते।

क्योंकि बोलने की ज़रूरत ही नहीं थी। उनकी आँखें ही सब कुछ कह देती थीं। आँखों में प्यार था, आँखों में इंतज़ार था, आँखों में एक दूसरे के लिए बेचैनी थी।

गाँव वाले कभी-कभी देख लेते। कुछ मुस्कुराते, कुछ हँसते, कुछ कहते "देखो, अतुल फिर उस पत्थर पर खड़ा है।" पर किसी ने कभी कुछ नहीं कहा। क्योंकि पहाड़ों में प्रेम को भी एक शांत सम्मान दिया जाता है।

5. वह दिन

एक दिन ऐसा हुआ कि नदी का पानी बहुत कम हो गया। गर्मी के दिन थे। पानी इतना घट गया कि उस पत्थर तक आना और भी आसान हो गया।

अतुल उस दिन पहले से जल्दी आ गया। वह पत्थर पर बैठ गया। गौरा भी आई। वह भी पत्थर पर आ गई।

दोनों के बीच अब बस कुछ ही फीट की दूरी थी।

गौरा ने उस दिन पहली बार कुछ कहा। बहुत धीमे से, हिचकिचाते हुए

"अतुल... तुम रोज़ क्यों आते हो ?"

अतुल चौंका। गौरा ने उसका नाम लिया था। कैसे जानती थी उसका नाम फिर उसे याद आया शायद किसी ने बताया होगा, या कभी सुना होगा।

वह मुस्कुराया। "तुम भी तो रोज़ आती हो।"

गौरा ने नीचे देखा। फिर ऊपर देखा। उसकी आँखों में सवाल था।

"अतुल... अगर यह नदी न होती... तो क्या हम साथ होते?"

अतुल कुछ पल चुप रहा। उसने दूर पहाड़ों को देखा। फिर गौरा को देखा। फिर धीरे से बोला

"शायद... पर फिर शायद यह इंतज़ार भी न होता।"

गौरा समझ गई। वह इंतज़ार ही तो उनके प्यार की पहचान था। वह दूरी ही तो उनके रिश्ते की ताकत थी।

दोनों मुस्कुराए। पर उनकी आँखों में एक अजीब-सी नमी थी।

6. खबर

दिन बीतते गए। महीने बीतते गए। वह सिलसिला चलता रहा रोज़ सुबह, वही नदी, वही पत्थर, वही नज़रें, वही मुस्कान।

पर एक दिन खबर आई।

अतुल के घर वालों ने सुना गौरा की शादी तय हो गई है। नदी के बहुत दूर, एक दूसरे गाँव में। वहाँ उसके लिए एक अच्छा लड़का देखा गया है। गौरा के पिता राजी हो गए हैं।

अतुल को यह खबर किसी और ने नहीं, खुद गौरा ने दी थी। एक दिन वह पत्थर पर मिली। उसकी आँखें लाल थीं। उसने बिना देखे ही कहा

"अतुल... मेरी शादी तय हो गई है।"

अतुल को लगा जैसे पूरा पहाड़ उस पर गिर पड़ा। उसने कुछ नहीं कहा। वह बस वहीं खड़ा रहा। देर तक खड़ा रहा।

गौरा भी खड़ी रही। दोनों के बीच बस नदी थी। पर लगता था जैसे पूरा जीवन खड़ा हो गया हो।

गौरा ने आखिर में कहा "हम शायद कभी एक नहीं हो पाए।"

अतुल ने धीरे से जवाब दिया "पर जो था... वह कभी अधूरा नहीं था।"

गौरा ने आखिरी बार उसे देखा। फिर वह वापस मुड़ गई। और उस दिन के बाद वह फिर कभी नदी पर नहीं आई।

7. वह दिन

उस दिन बारिश बहुत तेज़ थी। आसमान में काले-काले बादल छाए हुए थे बिजली कड़क रही थी, और हवा इतनी तेज़ कि पेड़ झुक गए थे। खोह नदी उफान पर थी। उसका पानी उछल-उछलकर बह रहा था, जैसे वह भी किसी दर्द में हो।

अतुल उस दिन भी गया। वह उसी पत्थर के पास गया। भीगता हुआ, चुपचाप। उसकी आँखों से बारिश के आँसू बह रहे थे या शायद उसके अपने आँसू, कोई नहीं जानता।

गौरा भी आई थी दूर से। वह उस पार खड़ी थी, एक पेड़ के नीचे। दोनों के बीच नदी थी उफनती, उछलती, गरजती।

दोनों ने एक-दूसरे को देखा। आखिरी बार। फिर गौरा ने हाथ हिलाया। अतुल ने भी हाथ हिलाया। और फिर गौरा वहाँ से चली गई।

नदी बहती रही। जैसे कुछ हुआ ही न हो।

8. पचास साल बाद

समय बीतता गया। साल बीतते गए। दशक बीतते गए।

अतुल अब पचहत्तर साल का हो गया था। उसके बाल सफेद हो गए थे, शरीर झुक गया था, आँखों की रोशनी कम हो गई थी। पर उसकी यादें आज भी वैसी ही थीं ताज़ा, सजीव, और दर्द भरी।

वह कभी शादी नहीं कर पाया। कोई लड़की उसे पसंद नहीं आई। कोई और चेहरा गौरा की जगह नहीं ले पाया। वह उसी घर में अकेला रहता था। उसके माता-पिता नहीं रहे। भाई-बहन शहर चले गए। बस वह अकेला था और उसकी यादें।

गौरा के बारे में उसने कभी कुछ नहीं सुना। उसे पता नहीं था कि वह कहाँ है, कैसे है, ज़िंदा है या नहीं। उसने कभी पूछने की कोशिश नहीं की। शायद इसलिए कि उसे डर था कहीं पता न चल जाए कि वह खुश नहीं है।

9. वह मुलाकात

वह दिन सर्दियों का एक धुँधला सुबह का वक्त था। अतुल हमेशा की तरह नदी के किनारे गया। अब वह रोज़ नहीं जाता था, पर कभी-कभी चला जाता था जब मन बहुत उदास होता था, जब यादें बहुत सताती थीं।

वह उसी पत्थर के पास बैठ गया जहाँ पचास साल पहले वह और गौरा खड़ा होते थे। अब वह पत्थर पानी में थोड़ा और डूब गया था, पर था तो वहीं।

तभी उसने देखा दूसरी तरफ से कोई आ रहा था। एक बूढ़ी महिला, झुकी हुई, हाथ में लाठी लिए। वह धीरे-धीरे नदी के किनारे आ रही थी। उसके सिर पर सफेद दुपट्टा था, चेहरा झुर्रियों से भरा था।

अतुल ने गौर से देखा। कुछ पहचान-सा लगा। पर यकीन नहीं हुआ।

वह महिला पास आई। उसने अतुल को देखा। बहुत देर देखा। फिर उसकी आँखों में आँसू आ गए।

"अतुल ?"

आवाज़ काँप रही थी, पर वह आवाज़ थी वही आवाज़, जो उसने पचास साल पहले सुनी थी।

"गौरा ?" अतुल की आवाज़ भी काँप गई।

हाँ, वह गौरा ही थी। बूढ़ी, थकी, पर वही गौरा। उसका पति मर चुका था बीस साल पहले। उसके बच्चे शहर चले गए थे। वह अकेली थी। कभी-कभी वह सोचती अतुल कैसा होगा ? क्या वह ज़िंदा होगा ?

आज वह सोचकर ही नदी के किनारे आ गई थी। बस देखने। और वह मिल गया।

10. पचास साल बाद की बातें

दोनों उसी पत्थर के पास बैठ गए। वही पत्थर, जहाँ पचास साल पहले वह खड़ा होते थे, एक-दूसरे को देखते थे, मुस्कुराते थे, इंतज़ार करते थे।

बहुत देर तक कुछ नहीं बोले। बस एक-दूसरे को देखते रहे। उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। फिर धीरे-धीरे बातें होने लगीं।

"गौरा, तुम कैसे हो ?"

"ठीक हूँ। बस... अकेली हूँ। और तुम ?"

"मैं भी अकेला हूँ। हमेशा से।"

गौरा ने उसका हाथ पकड़ लिया। वही हाथ, जो पचास साल पहले उसने कभी नहीं छुआ था। आज छू रही थी।

"अतुल, मैं तुम्हें कभी नहीं भूली।"

"मैं भी नहीं गौरा। तुम्हारे बिना मेरी ज़िन्दगी अधूरी रह गई।"

"हमारी ज़िन्दगी ही अधूरी रह गई।"

"पर जो था... वह अधूरा नहीं था।"

गौरा मुस्कुराई। वही बात, जो उसने पचास साल पहले कही थी।

11. वह शाम

वे घंटों बैठे रहे। बातें करते रहे। उन पुराने दिनों को याद करते रहे। वह सुबह, जब पहली बार नज़रें मिली थीं। वह मुस्कान, जिसने दिल चुरा लिया था। वह पत्थर, जो उनके प्यार का गवाह बना था।

शाम ढलने लगी। सूरज पहाड़ों के पीछे जा रहा था। आसमान में लालिमा फैल गई थी। देवदार के पेड़ सुनहरे दिख रहे थे।

गौरा ने कहा "अतुल, मुझे अब जाना होगा।"

अतुल का चेहरा उदास हो गया। "क्यों ? अभी तो मिले हैं।"

"अब हमारे पास समय कम है। पर अब डर नहीं लगता।"

"किस बात का डर ?"

"इस बात का कि हम एक नहीं हो पाए। अब पता चला हम एक थे हमेशा बस दूरी थी। और वह दूरी भी हमारे प्यार का हिस्सा थी।"

अतुल की आँखों से आँसू बहने लगे।

गौरा ने उसके माथे पर हाथ रखा। "धन्यवाद अतुल। इस पचास साल के इंतज़ार के लिए। इस प्यार के लिए। तुम्हारे बिना मेरी ज़िन्दगी भी अधूरी थी। पर आज पूरी हो गई।"

12. आखिरी मुलाकात

गौरा उठी। धीरे-धीरे वापस जाने लगी। अतुल ने उसे जाते देखा। वही नज़ारा, जो उसने पचास साल पहले देखा था। पर अब दोनों जानते थे यह आखिरी बार नहीं था।

गौरा ने पलटकर देखा। हाथ हिलाया। अतुल ने भी हाथ हिलाया। फिर गौरा चली गई।

अतुल वहीं बैठा रहा। बहुत देर बैठा रहा। नदी बह रही थी कल-कल, कल-कल। उसे लगा, जैसे नदी कह रही हो

"देखा, मैंने कहा था कुछ रिश्ते मिलकर नहीं, बिछड़कर पूरे होते हैं।"

13. उसके बाद

उस मुलाकात के बाद अतुल और गौरा फिर कभी मिले या नहीं कोई नहीं जानता। पर इतना ज़रूर है कि अतुल अब रोज़ नदी के किनारे जाता था। वहाँ बैठता था। कभी-कभी कोई बूढ़ी महिला दूसरी तरफ से आकर बैठ जाती थी। दोनों घंटों बैठे रहते। कुछ नहीं बोलते। बस एक-दूसरे को देखते रहते।

गाँव वाले कहते हैं वह गौरा थी। वह अब अपने गाँव छोड़कर नदी के इस पार आ गई थी। उसने अपने बेटे-बहू से कह दिया था कि वह अब यहीं रहेगी। एक छोटा-सा घर ले लिया था। अतुल के पास।

पर क्या सच में ऐसा हुआ ? क्या दोनों ने अपनी ज़िन्दगी के आखिरी दिन एक साथ बिताए ? या यह सिर्फ एक कहानी है जो लोग बनाते हैं ?

कोई नहीं जानता।

पर इतना ज़रूर है कि आज भी, जब कभी सर्दियों की धुँधली सुबह में आप उस नदी के किनारे जाते हैं, तो आपको वहाँ दो बूढ़े लोग दिख सकते हैं एक इस पार, एक उस पार एक-दूसरे को देखते हुए, मुस्कुराते हुए, बिना कुछ बोले।

और नदी बहती रहती है कल-कल, कल-कल जैसे वह भी उनके प्यार की गवाही दे रही हो।

14. उपसंहार

अतुल और गौरा का प्यार कभी पूरा नहीं हुआ। न शादी हुई, न साथ रहे। पर उनका प्यार मरा नहीं। वह पचास साल तक ज़िंदा रहा, और आज भी ज़िंदा

है उस नदी के किनारे, उस पत्थर पर, उन दो बूढ़ों की आँखों में, जो एक-दूसरे को देखकर मुस्कुराते हैं।

क्योंकि कभी-कभी प्यार का मतलब साथ होना नहीं होता। कभी-कभी प्यार का मतलब होता है इंतज़ार करना। और वह इंतज़ार ही प्यार को अमर बना देता है।

15. संदेश

हर प्रेम का अंत मिलन नहीं होता, पर हर सच्चा प्रेम दिल में हमेशा जीवित रहता है।

कभी-कभी दूरी ही रिश्ते को पूरा करती है। कभी-कभी इंतज़ार ही प्यार को सच्चा बनाता है। और कभी-कभी नदी के दो किनारे एक ही एहसास में बहते हैं।

अतुल और गौरा ने यही सिखाया प्यार साथ नहीं, एहसास का नाम है। और वह एहसास पचास साल बाद भी उतना ही ताज़ा होता है, जितना पहले दिन था।

अतुल नैथानी

संयुक्त परिवार – अपनापन
(पहाड़ के रिश्तों में प्यार, दर्द, अपनापन और समर्पण की कहानी)

नोट: यह कहानी पूर्णतः काल्पनिक है। गढ़वाल के पहाड़ों में बसे एक संयुक्त परिवार की यह मार्मिक प्रस्तुति है।

1. वह पुराना घर

दुगड्डा से ऊपर, जहाँ बादल घरों से होकर गुजरते थे, वहाँ एक पुराना-सा पहाड़ी घर था। पत्थर और मिट्टी से बना, और बीच में एक बड़ा-सा आँगन उस आँगन में एक पुराना पीपल का पेड़ था, जिसकी छाँव में तीन पीढ़ियाँ एक साथ रहती थीं।

यह घर था भवानी सिंह का।

भवानी सिंह अस्सी साल के थे। उनकी पत्नी - सावित्री - पचहत्तर की। उनके तीन बेटे थे -दिनेश, राजेश और महेश। तीनों शादीशुदा थे, तीनों के बच्चे थे। कुल मिलाकर घर में सत्रह लोग रहते थे।

एक छत के नीचे, एक चूल्हे की रोटी, और एक ही परिवार।

2. सुबह की शुरुआत

सुबह चार बजे उठ जातीं सावित्री। उनके उठते ही घर में हलचल शुरू हो जाती। पहले चूल्हा जलता, फिर चाय बनती, फिर एक-एक करके सब उठते।

दिनेश की पत्नी- गीता -सबसे पहले सास के पास आती। उसे कुछ कहना नहीं होता था, बस आकर बैठ जाती थी। दोनों साथ बैठकर चाय पीतीं, फिर काम पर लग जातीं।

राजेश की पत्नी- कमला - उनके बाद आती। वह थोड़ी देर से आती, पर उसके हाथ में हमेशा कुछ न कुछ होता -कभी साग, कभी दूध, कभी कुछ

महेश की पत्नी - चंपा -सबसे छोटी बहू थी। वह सबसे देर से आती, पर सबसे देर तक काम करती। उसे कोई नहीं टोकता था।

तीनों बहुओं के तीन अलग-अलग स्वभाव थे। पर सब एक साथ रहती थीं एक ही रसोई में, एक ही चूल्हे पर, एक ही परिवार के लिए।

3. दिनचर्या

दिन भर घर में शोर रहता। बच्चे दस थे छह लड़के, चार लड़कियाँ। उनकी किलकारियों से आँगन गूंजता रहता। कभी कोई रोता, कभी कोई हँसता, कभी कोई मार खाता, कभी कोई भाग जाता।

सावित्री सबको संभालतीं। वह जानती थीं किस बच्चे को कब क्या चाहिए किसे दूध पिलाना है, किसे दवा देनी है, किसे स्कूल भेजना है, किसे खेलने जाने देना है।

भवानी सिंह बरामदे में बैठे रहते। वह सब कुछ देखते, पर कुछ नहीं बोलते बस कभी-कभी मुस्कुरा देते। उनके लिए यही उनकी दौलत थी यह शोर, यह भीड़, यह परिवार।

4. दर्द

पर सब सुख ही नहीं था। दर्द भी था।

एक दिन दिनेश को चोट लग गई जंगल में पेड़ गिर गया। वह तीन महीने बिस्तर पर पड़ा रहा। उसकी पत्नी गीता पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। खेतों का काम, घर का काम, बच्चों की पढ़ाई, पति की सेवा सब अकेले।

पर उसे अकेला नहीं छोड़ा गया। राजेश की पत्नी कमला ने उसके खेतों में काम किया। महेश की पत्नी चंपा ने उसके बच्चों को संभाला। सावित्री ने दिनेश की सेवा में हाथ बँटाया। भवानी सिंह ने बैठे-बैठे हिम्मत बँधाई।

गीता रोती थी, पर अकेले नहीं। सब उसके साथ थे।

5. विवाद

पर कभी-कभी विवाद भी होते थे। इतने लोग एक साथ रहते हैं तो झगड़े तो होंगे ही।

एक दिन राजेश और महेश में किसी बात पर बहस हो गई। दोनों भड़क गए बात इतनी बढ़ गई कि दोनों ने अलग होने तक की बात कर ली।

उनकी पत्नियाँ भी अलग-अलग कोनों में बैठ गईं। बच्चे डर गए। पूरे घर में सन्नाटा छा गया।

शाम को सावित्री ने सबको बुलाया। आँगन में, उसी पीपल के नीचे। सब बैठ गए।

उन्होंने कहा "देखो बेटों, यह घर सिर्फ पत्थर-मिट्टी से नहीं बना है। यह हमारे पूर्वजों की तपस्या से बना है। यहाँ की हर दीवार में हमारे पिता का पसीना है, हर छत में हमारी माँ की दुआएँ हैं। अगर हम अलग हो गए, तो यह घर सूना हो जाएगा।"

भवानी सिंह बोले "बेटों, तुम लड़ सकते हो, पर याद रखो तुम भाई हो। तुम्हारा खून एक है। लड़ाई आएगी-जाएगी, पर खून नहीं बदलेगा।"

दोनों भाई शर्मिंदा हो गए। उन्होंने एक-दूसरे से माफ़ी माँगी। बहुएँ भी मिल गईं। फिर से वही शोर, वही हँसी, वही रौनक लौट आई।

6. समर्पण

तीनों बहुओं का समर्पण देखते ही बनता था।

गीता को चार बच्चे थे। वह दिन भर खेतों में काम करती, पर जब भी सास बीमार पड़तीं, वह सब छोड़कर उनके पास आ बैठती। दवा देती, खाना खिलाती, सिर दबाती।

कमला को तीन बच्चे थे। वह बहुत कम बोलती थी, पर काम में सबसे आगे रहती थी। जब भी कोई मुसीबत आती, वह बिना बोले काम में जुट जाती

चंपा सबसे छोटी थी। उसे अभी-अभी शादी हुई थी। वह सबसे ज्यादा रोती थी कभी ससुराल के लिए, कभी मायके के लिए। पर वह कभी काम से नहीं भागी। वह भी सबकी तरह जुटी रही।

सावित्री अक्सर कहतीं "मुझे तीन बहुएँ नहीं मिलीं, तीन बेटियाँ मिली हैं।"

7. रात की चौपाल

रात को सब खाना खाकर आँगन में बैठ जाते। उसी पीपल के नीचे। भवानी सिंह कहानियाँ सुनाते अपने बचपन की, अपने पिता की, अपने दादा की। बच्चे मुँह खोले सुनते रहते।

सावित्री गीत गुनगुनातीं। वही पुराने गीत जो उनकी सास ने उन्हें सिखाए थे, और अब वह अपनी बहुओं को सिखा रही थीं।

बहुएँ साथ में गातीं। उनकी आवाज़ें एक में मिल जातीं। बच्चे तालियाँ बजाते। पूरा आँगन गूँज उठता।

भवानी सिंह देखते रह जाते। उन्हें लगता यही तो ज़िन्दगी है। यही खुशी है यही संयुक्त परिवार की ताकत है।

8. परीक्षा

सबसे बड़ी परीक्षा तब आई, जब सावित्री बीमार पड़ गईं। बहुत बीमार। उन्हें अस्पताल ले जाना था, पर पहाड़ों में अस्पताल नहीं था। शहर ले जाने में तीन दिन लग जाते।

तीनों बहुओं ने बारी-बारी से उनकी सेवा की। दिन-रात। गीता ने अपने बच्चों को कमला के पास छोड़ दिया और सास के पास बैठ गई। कमला ने खेतों का काम छोड़ दिया और सेवा में जुट गई। चंपा ने अपने मायके जाना टाल दिया।

भवानी सिंह के आँसू रुक नहीं रहे थे। उन्होंने अपनी बहुओं की तरफ देखा उन्हें लगा ये तीनों ही तो इस घर की लक्ष्मी हैं।

सावित्री ठीक हो गईं। डॉक्टर ने कहा मरीज की जान बचाने में परिवार की सेवा से बड़ी कोई दवा नहीं होती।

9. शादी

फिर एक शादी आई बड़ी बहू गीता की बेटी की।

पूरे घर में खुशियाँ बिखर गईं। सबने मिलकर तैयारी की। भवानी सिंह ने बाज़ार से सामान लाया। सावित्री ने मिठाइयाँ बनाईं। राजेश और महेश ने पंडाल लगाया। कमला और चंपा ने रंगोली बनाई।

तीनों बहुओं ने मिलकर खाना बनाया एक चूल्हे पर, एक साथ, एक परिवार के लिए।

शादी के दिन पूरा गाँव इकट्ठा हुआ। सबने देखा कैसे तीन बहुएँ मिलकर सब कुछ संभाल रही हैं। कैसे भाई मिलकर काम कर रहे हैं। कैसे बच्चे मिलकर खेल रहे हैं।

गाँव के बुज़ुर्ग ने कहा "यही तो संयुक्त परिवार की ताकत है। यही हमारी पहाड़ी संस्कृति है।"

10. दर्द का पहाड़

पर दर्द भी आता है।

एक दिन खबर आई राजेश का एक्सीडेंट हो गया है। वह जंगल से लकड़ी ला रहा था, और उसका पैर फिसल गया। खाई में गिर गया।

पूरे घर में सन्नाटा छा गया। राजेश की पत्नी कमला बेहोश हो गई। बच्चे रोने लगे।

दिनेश और महेश तुरंत अस्पताल भागे। गीता और चंपा ने कमला को संभाला। सावित्री ने बच्चों को पास बिठाया। भवानी सिंह ने सबको हिम्मत दी।

राजेश बच गया। तीन महीने बाद घर लौटा। उसने देखा उसकी पत्नी ने उसके इंतज़ार में कैसे अपने आँसू पोंछे, उसके बच्चों ने कैसे उसके लिए प्रार्थना की, उसके भाइयों ने कैसे खेत संभाले, उसकी माँ ने कैसे हिम्मत बँधाई।

उसने सबके पैर छुए। बोला "मुझसे बड़ा धनी और कोई नहीं। मेरे पास यह परिवार है।"

11. बुढ़ापा

साल बीतते गए। भवानी सिंह और सावित्री और बूढ़े हो गए। अब वह उठ नहीं पाते थे। अब वह बरामदे में बैठे रहते, और सब कुछ देखते रहते।

बहुएँ उनके लिए खाना लातीं, दवा देतीं, सिर दबातीं। बच्चे उनके पास बैठकर कहानियाँ सुनते।

एक दिन भवानी सिंह ने सबको बुलाया। सब आए तीनों बेटे, तीनों बहुएँ, सारे बच्चे।

उन्होंने कहा "मैंने बहुत कुछ देखा ज़िन्दगी में। बहुत सुख-दुख झेले। पर आज मैं गर्व से कह सकता हूँ मेरी ज़िन्दगी सफल रही। क्योंकि मैंने यह परिवार बनाया।"

सावित्री ने कहा "बेटों, हम जा रहे हैं। पर यह घर, यह आँगन, यह पीपल यह हमेशा रहेगा। हमेशा यूँ ही एक साथ रहना। कभी अलग मत होना।"

तीनों बेटों ने वादा किया। तीनों बहुओं की आँखें नम थीं।

12. अंत

कुछ दिनों बाद भवानी सिंह चल बसे। उनके जाने के तीन महीने बाद सावित्री भी उनके पास चली गईं।

पूरा गाँव रोया। पर घर में कोई अलग नहीं हुआ। वैसे ही एक साथ रहते हैं

आज भी उस घर में सुबह चार बजे चूल्हा जलता है। आज भी रात को सब उसी पीपल के नीचे बैठते हैं। आज भी गीत गूंजते हैं। आज भी बच्चों की किलकारियाँ सुनाई देती हैं।

तीनों भाई आज भी एक साथ खेतों में काम करते हैं। तीनों बहुएँ आज भी एक साथ रसोई संभालती हैं। उनके बच्चे अब बड़े हो गए हैं, पर वे भी एक साथ रहते हैं।

लोग कहते हैं यह है असली संयुक्त परिवार। यह है पहाड़ की संस्कृति। यह है वह प्यार, वह दर्द, वह अपनापन, वह समर्पण जो सिर्फ पहाड़ों में मिलता है।

13. उपसंहार

उस घर के आँगन में आज भी वही पीपल का पेड़ है। उसकी छाँव में तीन पीढ़ियाँ नहीं, चार पीढ़ियाँ एक साथ रहती हैं। और वही गीत गूंजते हैं, वही कहानियाँ सुनाई जाती हैं, वही प्यार बँटता है।

गाँव के बुज़ुर्ग कहते हैं

"संयुक्त परिवार सिर्फ एक साथ रहने का नाम नहीं है।

यह एक-दूसरे के सुख-दुख में साथ खड़े होने का नाम है।

यह एक-दूसरे के दर्द को बाँटने का नाम है।

यह एक-दूसरे के लिए समर्पित होने का नाम है।

और यही असली धन है।"

14. संदेश

संयुक्त परिवार में रिश्ते कभी नहीं टूटते।

वहाँ हर दर्द बँट जाता है,

हर खुशी कई गुना हो जाती है।

वहाँ बहुएँ बेटियाँ होती हैं,

भाभियाँ बहनें होती हैं,

भतीजे-भतीजियाँ अपने बच्चे होते हैं।

वहाँ कोई अकेला नहीं होता।

वहाँ हर किसी का कोई न कोई होता है।

यही पहाड़ की संस्कृति है।

यही हमारी पहचान है।

यही असली धन है।

अतुल नैथानी

समापन – लेखक की कलम से

प्रिय पाठकों,

यह कहानी संग्रह "दुगड्डा की दंतकथाएँ" मेरे लिए सिर्फ एक किताब नहीं है। यह मेरे बचपन की यादों का संग्रह है, उन कहानियों का खजाना है जो मैंने अपनी दादी, नानी और गाँव के बुज़ुर्गों से किसी न किसी रूप मै सुनीं और उनको अपनी सोच के परिवेश मैं लिखी।

हर कहानी में दुगड्डा की मिट्टी की खुशबू है। हर पात्र में उस पहाड़ के लोगों की सादगी, संघर्ष और प्रेम है। चाहे वह मोहन लाल जी हों, जो नज़र उतारते थे, चाहे वह चम्पा चाची हों, जिन्होंने बिना शिकायत जीवन जिया, या भीम सिंह ढोली, जिनकी थाप में पहाड़ की धड़कन बसती थी।

इन कहानियों को लिखते हुए मैं खुद उन दिनों में लौट गया जब शाम ढलते ही चौपाल में बुज़ुर्ग इकट्ठा होते थे, जब औरतें धारा पर पानी भरते हुए गीत गाती थीं, जब ढोल की थाप पर पूरा गाँव झूम उठता था।

आज वह सब बदल गया है। पहाड़ों से युवा पलायन कर रहे हैं। परंपराएँ लुप्त हो रही हैं। धाराएँ सूख रही हैं। ढोल की थाप अब कम सुनाई देती है पर इन कहानियों के माध्यम से मैंने उस विरासत को संजोने की कोशिश की है जो धीरे-धीरे मिट रही है।

अगर ये कहानियाँ आपको कहीं ठहरने पर मजबूर करें, कुछ सोचने पर मजबूर करें, या बस एक पल के लिए आपको उस पहाड़ तक ले जाएँ जहाँ ये कहानियाँ बसती हैं तो मैं समझूँगा कि मेरी लेखनी सफल रही।

दुगड्डा की ये कहानियाँ यहीं खत्म नहीं होतीं। ये आपके दिलों में ज़िंदा रहेंगी जब तक आप इन्हें याद रखेंगे, जब तक आप इन्हें आगे बढ़ाएँगे।

क्योंकि कहानियाँ सिर्फ शब्द नहीं होतीं वे हमारी जड़ें होती हैं, हमारी पहचान होती हैं, हमारे पूर्वजों की आवाज़ होती हैं।

धन्यवाद कि आपने इस सफर में मेरा साथ दिया।

अतुल नैथानी